ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—40.00
एक प्रति—12.50
आजीवन सदस्यता शुल्क
800.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
सोइ ग्यान पूरा	सद्गुरु कबीर	1
लूट	देवेन्द्र कुमार मिश्रा	20
कबीर	श्री देवकी नंदन 'शान्त'	29
आनन्द अनुभूति	श्रीमती मीना जैन	32

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 | व्यवहार वीथी / 12 | परमार्थ पथ / 21
शंका समाधान / 30 | बीजक चिंतन / 36

लेख

अहिंसा	महात्मा गांधी	6
सुन्दरता का राज	गुरुक्षेम दास	10
मानव तेरी यही कहानी!	साध्वी राजेश्वरी	15
लाओत्जे क्या कहते हैं?		19
हिन्दू कहौं तो मैं नहीं	श्री धर्मदास	23
महापुरुषों का आचरण अमृत है	श्री शिवप्रसाद मिश्र	27
सद्गुरु का महत्त्व		43

कहानी

कोठी का चिराग	श्री विजय चितौरी	33

उपन्यास अंश

संत कबीर	श्री भावसिंह हिरवानी	41

निवेदन

1. पारख प्रकाश के सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपने ग्राहक नं. के साथ अपना मोबाइल नं. अवश्य दर्ज करवा दें जिससे शुल्क प्राप्ति, शुल्क समाप्ति तथा पत्रिका भेजने की सूचना आपको आपके मोबाइल नं. पर भेजी जा सके।

2. विभिन्न प्रदेशों में अनेक नये जिले बन जाने के कारण कई ग्राहकों को समय पर पारख प्रकाश नहीं मिल पा रहा है। जिन ग्राहकों के जिले बदल गये हैं वे अपने ग्राहक नं. के साथ नये जिले का नाम पिन कोड सहित अवश्य सूचित करें, ताकि आपके पते पर आपके नये जिले का नाम दर्ज किया जा सके, जिससे आपको समय पर पारख प्रकाश मिलने में सुविधा हो।

वर्ष 44 **अक्टूबर-नवंबर-दिसंबर** **अंक 3**

2014

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

~~*श्री निर्भय साहेब कृत*~~
न्यायनामा

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम को
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

सद्गुरवे नमः

कबीर संस्थान प्रकाशन

सूची पत्र : सितम्बर 2014

कबीर पारख संस्थान

संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211 011

फोन : 0532-2090366

Visit us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo.com

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत

1.	बीजक मूल (छोटा)	20.00
2.	बीजक मूल (बड़ा)	30.00
3.	कबीर भजनावली (भाग-1)	27.00
4.	कबीर भजनावली (भाग-2)	28.00
5.	कबीर साखी	16.00
6.	न्यायनामा **(श्री निर्बंध साहेब)**	3.00

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत

7.	विवेक प्रकाश मूल	12.00
8.	बोधसार मूल	5.00
9.	रहनि प्रबोधिनी मूल	4.00
10.	भजन प्रवेशिका **(श्री निर्बंध साहेब)**	12.00

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत

11.	विशाल वचनामृत	80.00

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत

52.	बीजक टीका (अजिल्द)	80.00
53.	बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड	250.00
54.	बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड	240.00
55.	बीजक प्रवचन	45.00
56.	कबीर बीजक शिक्षा	90.00
57.	संत कबीर और उनके उपदेश	135.00
58.	कहत कबीर	125.00
59.	कबीर दर्शन	215.00
60.	कबीर : जीवन और दर्शन	40.00
61.	कबीर का सच्चा रास्ता	28.00
62.	कबीर की उलटवांसियां	30.00
63.	कबीर अमृतवाणी सटीक	50.00
64.	कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	35.00
65.	कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि	20.00
66.	कबीर कौन?	5.00
67.	कबीर सन्देश	5.00
68.	कबीर का प्रेम	4.00
69.	कबीर साहेब	8.00
70.	कबीर का पारख सिद्धांत	30.00
71.	कबीर परिचय सटीक	40.00
72.	पंचग्रथी सटीक	215.00
73.	विवेक प्रकाश सटीक	125.00
74.	बोधसार सटीक	40.00
75.	रहनि प्रबोधिनी सटीक	60.00
76.	गुरुपारख बोध सटीक	20.00
77.	मुक्तिद्वार सटीक	75.00
78.	रामायण रहस्य	200.00
79.	वेद क्या कहते हैं?	175.00
80.	बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)	80.00
81.	मानसमणि	40.00
82.	तुलसी पंचामृत	27.00
83.	उपनिषद् सौरभ	60.00
84.	योगदर्शन	60.00
85.	गीतासार	115.00

86.	वैदिक राष्ट्रीयता	6.00	
87.	श्री कृष्ण और गीता	6.00	
88.	मोक्ष शास्त्र	90.00	
89.	कल्याणपथ	35.00	
90.	ब्रह्मचर्य जीवन	45.00	
91.	बूंद बूंद अमृत	20.00	
92.	सब सुख तेरे पास	20.00	
93.	बसै आनंद अटारी	28.00	
94.	छाड़हु मन विस्तारा	25.00	
95.	घूंघट के पट खोल	28.00	
96.	हंसा सुधि करु अपनो देश	20.00	
97.	उड़ि चलो हंसा अमरलोक को	18.00	
98.	समुद्र समाना बुंद में	20.00	
99.	मेरी और ह्वेन सां की डायरी	28.00	
100.	बंदे करि ले आप निबेरा	25.00	
101.	शाश्वत जीवन	45.00	
102.	सहज समाधि	15.00	
103.	ज्ञान चौंतीसा	15.00	
104.	सपने सोया मानवा	10.00	
105.	ढाई आखर	37.00	
106.	धर्म को डुबाने वाला कौन?	32.00	
107.	समझे की गति एक है	40.00	
108.	धर्म और मजहब	25.00	
109.	जीवन का सच्चा आनंद	28.00	
110.	प्रश्नोत्तरी	80.00	
111.	पत्रावली	65.00	
112.	संसार के महापुरुष	140.00	
113.	फुले और पेरियार	9.00	
114.	व्यवहार की कला	30.00	
115.	स्त्री बाल शिक्षा	33.00	
116.	आप किधर जा रहे हैं?	15.00	
117.	स्वर्ग और मोक्ष	20.00	
118.	ऐसी करनी कर चलो	27.00	
119.	ये भ्रम भूत सकल जग खाया	40.00	
120.	सरल शिक्षा	40.00	
121.	जगन्मीमांसा	30.00	
122.	बुद्धि विनोद	25.00	
123.	हृदय के गीत	25.00	
124.	वैराग्य संजीवनी	28.00	
125.	भजनावली	30.00	
126.	आदेश प्रभा	3.00	
127.	राम से कबीर	12.00	
128.	अनंत की ओर	13.00	
129.	कबीरपंथी जीवनचर्या	15.00	
130.	अहिंसा शुद्धाहार	12.00	
131.	हितोपदेश समाधान	12.00	
132.	मैं कौन हूं?	7.00	
133.	ब्राह्मण कौन?	7.00	
134.	नास्तिक कौन?	2.00	
135.	श्री कृष्ण कौन?	5.00	
136.	संत कौन?	4.00	
137.	हिन्दू कौन?	4.00	
138.	जीवन क्या है?	7.00	
139.	ध्यान क्या है?	5.00	
140.	योग क्या है?	5.00	
141.	पारख समाधि क्या है?	4.00	
142.	ईश्वर क्या है?	8.00	
143.	अद्वैत क्या है?	5.00	
144.	जागत नींद न कीजै	3.00	
145.	सरल बोध	7.00	
146.	श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	4.00	
147.	सत्यनिष्ठा (सटीक)	40.00	
148.	कबीर अमृत वाणी (बड़ी)	80.00	
149.	बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)	15.00	
150.	गृहस्थ धर्म	70.00	
151.	कबीर खड़ा बजार में	70.00	
152.	सत्य की खोज	70.00	
153.	स्वभाव का सुधार	65.00	
154.	भूला लोग कहैं घर मेरा	30.00	
155.	ऊंची घाटी राम की	35.00	
156.	शंकराचार्य क्या कहते हैं?	90.00	
157.	न्यायनामा (सटीक)	17.00	
158.	भवयान (सटीक)	140.00	
159.	विष्णु और वैष्णव कौन?	6.00	
161.	निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर	150.00	
162.	लाओत्ज़े क्या कहते हैं?	130.00	
163.	राम नाम भजु लागू तीर	18.00	
164.	आत्मसंयम ही राम भजन है	25.00	
165.	आत्मधन की परख	20.00	
166.	वैराग्य त्रिवेणी	55.00	
167.	अष्टावक्र गीता	50.00	
168.	सुख सागर भीतर है	55.00	
169.	मन की पीड़ा से मुक्ति	90.00	
170.	अमृत कहाँ है?	65.00	
171.	तेरा साहेब है घट भीतर	80.00	
172.	महाभारत मीमांसा	275.00	
173.	धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश	30.00	
174.	पलटू साहेब की बानी	175.00	
175.	संत वाणी	100.00	
160.	बीजक टीका **(मराठी अनुवाद)**	110.00	
ENGLISH TRANSLATION			
176.	Kabir Bijak (Commentary)	90.00	
177.	Eternal Life	50.00	
178.	Art of Human Behaviour	—	
179.	Who am I?	10.00	
180.	What is Life?	6.00	
181.	Kabir Amritvani	125.00	
182.	The Bijak of Kabir (In Verses)	110.00	

183.	Kabir Bijak (Elucidation Sakhi Chapter)	250.00
184.	Saint Kabir and his Teachings	200.00
185.	Life and Philosophy of Kabir	50.00

गुजराती अनुवाद

201.	बीजक मूल	30.00
202.	बीजक व्याख्या : भाग-1	275.00
203.	बीजक व्याख्या : भाग-2	250.00
204.	कबीर अमृतवाणी	65.00
205.	अढ़ी अक्षर प्रेम ना	60.00
206.	व्यवहार नी कला	40.00
207.	गुरु पारख बोध	20.00
208.	स्त्री बाल शिक्षा	35.00
209.	शाश्वत जीवन	45.00
210.	ध्यान शुं छे?	6.00
211.	हूं कोण छूं?	10.00
212.	धर्म ने डुबारनार कोण?	45.00
213.	जीवन शुं छे?	9.00
214.	ईश्वर शुं छे?	6.00
215.	कबीर सन्देश	6.00
216.	श्री कृष्ण अने गीता	7.00
217.	कबीर नो सांचो प्रेम	6.00
218.	गुरुवंदना	6.00
219.	संत कबीर अने अेमना उपदेश	150.00
220.	कबीर : जीवन अने दर्शन	30.00

संत श्री धमेन्द्र साहेब कृत

231.	कबीर के ज्वलंत रूप	35.00
232.	सार सार को गहि रहे	25.00
233.	सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत	3.00
234.	पूजिय विप्र शील गुण हीना	3.00
235.	सबकी मांगे खैर	40.00
236.	सुखी जीवन की कला	60.00
237.	बूंद बूंद से घट भरे	55.00
238.	साचा शब्द कबीर का	80.00
239.	सुखी जीवन का रहस्य	60.00
240.	कबीर बीजक के रत्न	125.00

गुजराती अनुवाद

261.	सुखी जीवन नी कला	70.00
262.	सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत	5.00

संत श्री अशोक साहेब कृत

266.	पानी में मीन पियासी	25.00
267.	धनी कौन?	20.00
268.	बोध कथाएं	45.00
269.	ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया	35.00

श्री राम दास कृत

296.	सद्गुरु अभिलाष साहेब : जीवन और दर्पण	180.00

श्री भावसिंह हिरवानी कृत

270.	कबीर (नाटक)	45.00
271.	प्रेरक कहानियां	45.00
272.	काया कल्प	25.00
273.	समर्पण	15.00
274.	बाल कहानियां	17.00
295.	ना घर तेरा ना घर मेरा	40.00
294.	जीवन का सच	40.00

अन्य लेखकों की

275.	गुरुवंदना (संकलित)	6.00
276.	कल्पतरु (घनश्याम प्रसाद वर्मा)	15.00
277.	संत वचनामृत (अज्ञात)	3.00
278.	विनय पद (श्री सजीवन साहेब)	10.00
279.	आत्म संयम ('')	17.00
280.	जग बौराना (रणजीत सिंह)	20.00
281.	ज्ञान गीता (विष्णुदयाल साहेब)	6.00
282.	पुष्पांजलि (डा. नीलमणि)	5.00
283.	जीवन गीत (श्री जीवन साहेब)	3.00
285.	भक्ति ज्ञान प्रकाश (बलदेव साहेब)	3.00
286.	मधुसंचय (सत्यानंद त्यागी)	15.00
287.	आनंद सिंधु ('')	30.00
288.	परख बोध (श्री मनी लाल)	18.00
289.	कसौटी (श्री शिवप्रसाद मिश्र)	25.00
290.	जय जय संत कबीर (श्री गोविंद देव अ.)	3.00
291.	संत ईसा और कबीर (श्री विनान्स जॉन)	3.00
292.	कबीर : एक गहरा चिंतन (श्री आत्मा प्रसाद अस्थाना)	35.00
293.	विचार माला (श्री विमलनाभ श्रीवास्तव)	20.00

सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित
हिन्दी त्रैमासिक

पारख प्रकाश

वार्षिक शुल्क 40.00 रु०   एक प्रति 12.50 रु०

आजीवन शुल्क 800.00

संपादक : श्री अभिलाष साहेब जी

मुझे विश्वास है कि इसके द्वारा एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हो सकेगी। **आचार्य परशुराम चतुर्वेदी**

सद्गुरु कबीर की वाणी का तथ्यपूर्ण प्रसार करने के लिए पारख प्रकाश की जितनी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है।

डॉ० रामकुमार वर्मा

शुल्क भेजकर शीघ्र ही ग्राहक बनें। अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को भी ग्राहक बनाकर सद्गुरु कबीर के मानवतावादी संदेश के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दें।

पत्रिका मंगाने तथा पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211 011

फोन : 0532-2090366

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

दया राखि धरम को पाले, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सबको जाने, ताहि मिले अविनासी ॥ सद्गुरु कबीर॥

वर्ष 44] इलाहाबाद, कार्तिक, वि० सं० 2071, अक्टूबर 2014, सत्कबीराब्द 616 [अंक 2

सोइ ग्यान पूरा

चाम के महल में भूल मत बावरे, स्वपन का संग है बूझि रहना।
साँच सो प्रीत कर स्वप्न धोखा तजो, चाम अरु राम को चीन्ह गहना॥
जासु का खोज सब रोज तुम करत हो, मुकुर की छाह में नाहिं लेना।
देख ले आपना आपको आपही, कहैं कबीर यों सत्य कहना॥

काम की अगिन में जीव यों जलत है, ग्यान बिचार कछु नाहिं सूझै।
खोया परतीत अरु बोय बाजी दई, सब्द मानै नहीं काल बूझै॥
झूठ को थापि के साँच को ना थापै, झूठ की पक्ष फिर गहै गाढ़ी।
कहैं कबीर अन्ध चेते नहीं, काल की चोट यों खाय ठाढ़ी॥

कहन को सूर और रहन को कूर हैं, रहन बिनु कहन किस काम आवै।
रहन रजमा बिना कहन झूठी सबै, पाँच फूटा फिरै काल खावै॥
पाँच को बस करै नाम हृदय धरै, कहैं कबीर कोइ संत सूरा।
कहन अरु रहन तब दोउ एके भई, प्रकट तहँ मान सोइ ग्यान पूरा॥

पारख प्रकाश

मन का मौन ध्यान है

मनुष्य शरीर से जो कुछ करता है उसमें शरीर की ऊर्जा-शक्ति का क्षय होता है। छोटी-सी-छोटी किसी भी प्रकार की क्रिया क्यों न हो हर क्रिया में शक्ति का क्षय होता है। हम कुछ भी करें उसके करने में शक्ति लगती है। हम चुपचाप बैठे हैं इतने में सिर में खुजली हुई, हम हाथ उठा कर सिर खुजलाते हैं। हाथ को उठा कर सिर तक ले जाने में लाखों-करोड़ों कोशिकाएं सक्रिय होती हैं तब हाथ खुजलाने का काम कर पाता है। लगता है हमें कि इसमें शक्ति कहां लगी, शक्ति का क्षय कहां हुआ, लेकिन इसमें भी शक्ति लगती है, इसमें भी ऊर्जा की खपत होती है। इतना ही नहीं हम चुपचाप बैठे हैं और मन संकल्प-विकल्प में उलझा हुआ है तो उसमें भी ऊर्जा का क्षय होता है। सोचने में ऊर्जा का क्षय होता है, यह बात जल्दी समझ में नहीं आयेगी। लेकिन यह एक वास्तविकता है, जितना ज्यादा हमारा मन सक्रिय होता है, संकल्प-विकल्प में उलझता रहता है, तनाव-चिंता में डूबा रहता है उतना ज्यादा शक्ति का क्षरण होता है। उससे ज्यादा बोलने में होता है, और उससे भी ज्यादा कोई काम करने में, दौड़ने में, व्यायाम करने में, तैरने में। हर शारीरिक क्रिया में ऊर्जा का क्षरण होता है। क्रियामात्र ऊर्जा के क्षरण के बिना संभव नहीं है।

ध्यान में करना कुछ नहीं है, क्योंकि शारीरिक गतिविधि तो कुछ हो ही नहीं रही है। मन से बोलना अर्थात सोचना-विचारना, चिंतन-मनन, संकल्प-विकल्प भी नहीं हो रहा है। मुख से भी बोलना नहीं हो रहा है। तीनों की क्रियाएं स्थगित हैं। इसलिए ध्यान में ऊर्जा का क्षरण नहीं होता। ध्यान ऊर्जा का संचयन करना है, शक्ति अर्जन करना है। ध्यान में बैठने पर ऊर्जा का संरक्षण-संचयन होता है। कालांतर में व्यवहार में आप जायेंगे तो जो संचित ऊर्जा है उसका आप अन्य कामों में अच्छे ढंग से इस्तेमाल कर सकते हैं। जो अनेक बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, महापुरुष हुए हैं, जिन्हें हम पीर, पैगम्बर, गुरु, सद्गुरु, भगवान कहते हैं उनमें और हममें अन्तर क्या है? यही कि हमारी ऊर्जा हर समय व्यर्थ के कार्यों एवं व्यर्थ के चिंतन में नष्ट हो रही है। हम निरंतर अपनी ऊर्जा को क्षय करने में लगे हुए हैं। क्योंकि हमारा मन बिखरा हुआ है, इन्द्रियां बिखरी हुईं एवं असंतुलित हैं। लेकिन उन्होंने सब तरफ से अपने को संयमित कर लिया था, अपने मन को एकाग्र-स्ववश कर लिया था इसलिए उनकी ऊर्जा संचित हो गयी थी, और उन्होंने अपनी संचित ऊर्जा को लोककल्याण तथा आत्मकल्याण में प्रयोग किया, और अद्भुत काम कर गये।

आज भी देखें। बड़े-बड़े वैज्ञानिक जो भौतिक क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान में लगे हुए हैं उनका मन बिखरा हुआ नहीं होता है। वे सब तरफ से अपने मन को समेट कर जिस विषय की शोध कर रहे हैं उसी में ही एकाग्र किये रहते हैं। जितना मन असंतुलित होगा, चंचल होगा उतना ऊर्जा का क्षरण होगा और जितना एकाग्र होगा, संयमित होगा उतना ही ऊर्जा का संचय होगा। चंचल मन वाला व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति तो कर ही नहीं सकता, वह कोई नयी भौतिक खोज भी नहीं कर सकता। बड़े-बड़े वैज्ञानिक ध्यानार्थी-ध्यानी होते हैं। वे एक प्रकार के साधक ही हैं। जो साधक नहीं होगा, भोगों में डूबा होगा, लड़ाई-झगड़ा-कलह में पड़ा होगा वह आविष्कार क्या करेगा, खोज-शोध क्या करेगा! सब तरफ से अपने मन को समेट लेना होता है तब किसी नयी चीज का शोधन होता है। कितने वैज्ञानिक तो दो-दो तीन-तीन दिनों तक बिना खाये लगे रहते हैं। सोचते हैं कि खाने-पीने में लगेंगे तो यह काम पूरा नहीं हो पायेगा, बीच में प्रक्रिया रुक जायेगी, इसलिए वे भूखे रह कर भी कई-कई बार अपने शोध में लगे होते हैं। तब वे कोई नया ज्ञान दुनिया को दे पाते हैं।

ध्यान ऊर्जा का संचयन करना है। जितना हमारा मन ध्यान में डूबेगा, उतनी हमारी ऊर्जा संचित होगी।

और उस संचित ऊर्जा का उपयोग हम लोककल्याण और आत्मकल्याण में कर सकेंगे।

अब प्रश्न है ध्यान क्या है? क्या चुपचाप आंखें बंद कर बैठे रहना ध्यान है। मात्र हाथ-पैर बटोरकर चुपचाप बैठ जाना ध्यान नहीं है, किन्तु ध्यान है मन का बैठ जाना, मन का चुप हो जाना। मन का कुछ न करना। इसका अर्थ है मन का संकल्पमुक्त हो जाना, पूर्ण शांत, निर्विषय हो जाना। सांख्य दर्शन में कहा गया है—"ध्यानं निर्विषयं मनः" मन का निर्विषय अर्थात संकल्प रहित हो जाना ध्यान है। संकल्प किसका होता है प्राणी-पदार्थों का। कुछ भी आप संकल्प करें उसमें प्राणी और पदार्थों के नाम ही आयेंगे। उनका रूप-आकार, गुण-धर्म आयेंगे। बिना नाम के, बिना किसी विषय के संकल्प हो ही नहीं सकता। जहां संकल्प होता है वहां शब्द चलते हैं और शब्द नाम और रूप के होते हैं।

सद्गुरु कबीर ने कहा है—"जहाँ बोल तहाँ अक्षर आया।" जहां कुछ भी बोला जाता है वहां अक्षर आता है। वहां एक रूप बना करके मन आसक्त हो जाता है। अतः संकल्प सदैव विषयों का, प्राणी और पदार्थों का होता है। विषय का अर्थ है जो कुछ मन और इन्द्रियों से प्रतीतमान होता हो। शरीर से लेकर संसार की सारी चीजें विषय के अर्न्तगत हैं। चाहे वह प्राणी के रूप में हो चाहे पदार्थ के रूप में हो। बिना रूप और नाम के कोई प्राणी या पदार्थ नहीं है। इनका ही संकल्प होता रहता है। इन संकल्पों का त्याग हो जाना ध्यान है।

ध्यान की अंतिम स्थिति है केवल आत्मसत्ता, स्व सत्ता मात्र रह जाना जहां दूसरे की उपस्थिति नहीं रहती। पूर्ण असंग, कैवल्य दशा है ध्यान। इसके लिए निरंतर परिश्रम करना होगा। जब मन विवेक में ढला होगा और जीवन के सारे आचरण शुद्ध-संयत होंगे, तब धीरे-धीरे साधना-अभ्यास करते-करते यह स्थिति आयेगी।

सेवा, स्वाध्याय, सत्संग, भक्ति में जितना समय लगाया जायेगा, जितना अभ्यास किया जायेगा, चित्त जितना शुद्ध, संयत, शांत, एकाग्र होता जायेगा उतनी धीरे-धीरे यह स्थिति आती जायेगी। वैसे मात्र एकाग्रता ध्यान नहीं है। किसी भी विषय में मन को एकाग्र कर ले इतना ही ध्यान नहीं है। जो विषय जिसको अधिक प्रिय होता है वह उसका चिंतन करता रहे तो उसका मन उसमें एकाग्र हो जायेगा। जहां अधिक प्रियता होगी, जिसके बारे में अधिक गहराई से सोचना शुरू करेंगे वहां मन एकाग्र हो जायेगा, और अन्य बातें भूल जायेंगी। अतः एकाग्रता मात्र ध्यान नहीं है। एकाग्रता कहां है, किसमें है, यह देखना होगा। जब चोर चोरी की योजना बनाता है तो उसका मन कितना एकाग्र होता है, शिकारी किसी जानवर पर निशाना साधकर बैठता है तब उसका मन कितना एकाग्र होता है, कोई युवक या युवती अपने प्रेमिका या प्रेमी की याद में डूबा रहता है तब उसका मन कितना एकाग्र रहता है, लेकिन यह एकाग्रता ध्यान नहीं हो सकती। क्योंकि यह एकाग्रता मन की मलिनता का, कुसंस्कारों एवं वासना-वृद्धि का कारण बनती है। किसी भी विषय में मन की एकाग्रता ध्यान में तब सहायक होगी जब वह एकाग्रता किसी शुद्ध विषय में हो। शुभ विषय जहां आसक्ति न बनती हो। वासना न बनती हो। जिसकी वासना और आसक्ति न भटकाती हो उस विषय में मन को पहले एकाग्र करना होता है। ऐसा नहीं है कि जहां कहीं भी मन को एकाग्र कर लिये और समझ लिये कि हम ध्यान कर रहे हैं।

जो शुभ विषय हैं उनमें यदि मन एकाग्र होता है, तो वह एकाग्रता ध्यान में सहायक होती है। और जो अशुभ विषय हैं उनमें मन एकाग्र होता है तो वह एकाग्रता ध्यान में बाधक होती है। हर आदमी में अपने मन को एकाग्र करने की शक्ति है। यह बात अलग है कि अपनी उस शक्ति का उपयोग वह कहां करता है। यदि वह अपनी शक्ति को सांसारिक राग-रंग, विषय-वासना की तरफ लगाता है तो वह दुख एवं बंधन का कारण बनती है, किन्तु उसी शक्ति को जब संयम-साधना, आत्मानुराग में लगाता है तब वह सुख-शान्ति, मोक्ष का कारण बनती है।

जो विषय आपको प्रिय हो उसमें आप अपने मन को एकाग्र कर सकते हैं। लोग कहते हैं कि क्या करूं साहेब, मेरा मन तो कभी रुकता ही नहीं और कहीं

लगता ही नहीं। ऐसा नहीं है, मन रुकता भी है और लगता भी है। जैसे आप सिनेमा देखने गये। सिनेमा देख रहे हैं तो घर को भी भूल गये, मित्रों को भी भूल गये, काम-धाम करना है यह भी भूल गये, एकदम एकाग्र हो गया मन। यदि आपका मन एकाग्र नहीं होता तो सिनेमा में आनन्द नहीं आता, आप तीन घण्टा वहां बैठे थोड़े रहते। आपका मन एकाग्र हुआ और आप में वह शक्ति है। जहां आप लाभ जानेंगे, जहां आपकी प्रियता होगी, उसमें आपका मन एकाग्र हो जायेगा। ज्ञान में प्रियता होगी, ज्ञान में लाभ जान पड़ेगा, ध्यान में प्रियता होगी ध्यान में लाभ जान पड़ेगा, तो वहां आप मन को एकाग्र कर लेंगे। लेकिन इधर प्रियता नहीं बनती है। इधर के प्रति मन में रुचि नहीं है, इसलिए ध्यान-साधना में मन नहीं लगता। रुचि जागृत हो, लगन हो, उत्साह हो, इसके लिए प्रयास किया जाये तो यहां भी मन लग जायेगा। लेकिन जितना लाभ संसार के स्मरणों में जान पड़ता है, भोगों के स्मरणों में जान पड़ता है, उतना लाभ सेवा, स्वाध्याय, साधना में नहीं जान पड़ता है। इसलिए स्वाध्याय, ध्यान-साधना का काम कठिन जान पड़ता है।

ध्यान-साधना का काम कठिन नहीं है। ध्यान तो बिलकुल सरल है, क्योंकि इसमें करना कुछ नहीं होता। कठिनाई तो करने में है, न करने में कठिनाई कहां है! अतः ध्यान करना कठिन नहीं है। कठिन है आदतों का, मोह का त्याग करना। हम अपनी गलत आदत एवं मोह का त्याग करना नहीं चाहते, क्योंकि उनमें सुख की निश्चयता है, इसलिए ध्यान करना कठिन लगता है। जब तक गलत आदतों के प्रति, विषयों के प्रति सुख-बुद्धि, सुख की निश्चयता रहेगी तब तक मोह का त्याग करना कठिन होगा और जब तक मोह का त्याग नहीं होगा, तब तक ध्यान कठिन लगेगा। जिस दिन मोह का त्याग हो जायेगा, मन निर्मोह-निष्काम हो जायेगा उस दिन ध्यान-जैसा सरल कुछ काम नहीं जान पड़ेगा। क्योंकि इसमें करना कुछ नहीं है?

कठिन से कठिन काम आदमी क्यों कर लेता है क्योंकि उसमें लाभ जान पड़ता है। जहां लाभ जान पड़ा लोग रोकते रह जायेंगे, बाधा उपस्थिति करते रहेंगे, फिर भी आप छिप करके चाहे जैसे हो उस काम को कर लेंगे।

आदमी में शक्ति है जहां वह लग जाये क्या नहीं कर सकता। व्यावहारिक क्षेत्र में देखें कितना कठिन से कठिन काम आदमी कर लेता है। आज भी कर रहा है। पैसा कमाने में लाभ निश्चय हुआ घर, परिवार, सगे संबंधी सबका मोह छोड़कर आदमी कहां-कहां चला जाता है। देश के दूसरे कोने में नहीं विदेश चला जाता है। साल दो साल, चार-चार साल तक वहां रहता है, और पैसा कमाता है। जिस परिवार के बिना, पत्नी-पुत्र, सगे-संबंधियों के बिना दो-चार दिन रहना मुश्किल था, पैसा कमाने में लाभ जान पड़ा तो अब उनके बिना दो-चार साल रह लेता है। इससे सिद्ध होता है कि आदमी में त्याग की शक्ति है, बस लाभ जान पड़ना चाहिए। जिस दिन ध्यान-साधना में लाभ जान पड़ेगा उस दिन आदमी पूर्ण समर्पित हो कर उसमें लग जायेगा। और जो पूर्ण समर्पित होकर लगेगा उसको निश्चित ही सफलता मिलेगी।

भौतिक क्षेत्र में ऐसा भी होता है कि पूरा परिश्रम करने के बाद भी कभी-कभी सफलता न मिल पाये। क्योंकि भौतिक क्षेत्र की सफलता केवल अपने हाथ में नहीं है, प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों पर निर्भर है। जैसे किसान ज्येष्ठ माह के आखिर से ही खेत को सिंचना-गोड़ना, उसमें खाद-पानी देना, बीज डालना आदि शुरू कर देता है। किसान पूरी मेहनत कर रहा है, पूरी तत्परता से जुटा हुआ है, लेकिन बरसात ही नहीं हो रही है तो फसल कैसे होगी। बरसात हुई भी तो इतनी ज्यादा हो गयी कि फसल डूब गयी, तो कहां से उसे फसल मिलेगी। चाहे आप किसी भी क्षेत्र में कितनी मेहनत क्यों न करें, प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति की अनुकूलता के बिना न तो आपको पूरी सफलता मिल सकती है और न आप इन्द्रियों के भोग भोग सकते हैं। बाहरी भौतिक क्षेत्र में तो पदे-पदे बाधाएं हैं। आंतरिक क्षेत्र में यदि कुछ बाधक है तो मन का मोह। और मन

के मोह को मिटाने में प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति अवरोधक नहीं हैं। अवरोधक हैं अविद्या, विषयासक्ति, सुखप्रियता और साहसहीनता। इनको मिटा देने पर ध्यान अत्यंत सरल है, क्योंकि ध्यान-साधना में न प्राणी अवरोधक है, न पदार्थ और न ही परिस्थिति अवरोधक है। इसमें बरसात होने-नहीं होने की, ठण्डी-गरमी पड़ने-नहीं पड़ने की, प्राणियों के संग साथ छुटने या नहीं छुटने की, कोई आवश्यकता नहीं, कोई बाधा नहीं। यदि कुछ बाधा है तो हमारे मन का मोह। मन के मोह को, अज्ञान-अविद्या को छोड़ कर इसमें और कोई बाधा नहीं है।

सार यह है कि कुछ न करना ध्यान है। कुछ न करने का अर्थ मन से कुछ न करना, कुछ न सोचना। मन का पूर्ण मौन हो जाना, यह ध्यान है। लेकिन मन को मौन करने के लिए पहले बहुत कुछ करना होगा। लगातार संतों के संग-साथ बैठ करके ज्ञान चर्चा करनी होगी, सेवा-सत्संग करना होगा। मन-इन्द्रियों पर संयम करना होगा। जीवन यात्रा में मिले हुए लोगों के साथ सुन्दर व्यवहार करना होगा। विवेक, विचार, दया, क्षमा आदि सद्गुणों का जीवन में आचरण करना होगा। यह सब धीर-धीरे करते-करते जब मन पवित्र होगा, निर्मल होगा, मन की गांठ एक-एक करके खुलती जायेगी तब वह स्थिति आयेगी। उसके लिए केवल हमें ही काम करना पड़ेगा। संत-गुरु जन रास्ता बता रहे हैं, रास्ता बताकर उन्होंने आधा काम कर दिया। आधा काम हमें करना होगा। एक उदाहरण याद आता है—एक युवक की शादी की बात चल रही थी। एक सज्जन ने पूछा—कहो, तुम्हारी शादी तय हो गयी? उसने कहा—पचास प्रतिशत तय हो गयी है और पचास प्रतिशत बाकी है। इसका मतलब? मतलब यह है कि लड़की मुझे पसंद आ गयी है और अब लड़की वालों को मुझे पसंद करना है। यदि वे लोग मुझे पसंद कर लें तो बाकी पचास प्रतिशत पूरा हो जायेगा।

ऐसे ही संत, गुरु, महात्मा गण उपदेश दे रहे हैं, समझा रहे हैं, उस पथ पर चल कर बता रहे हैं, तो उनके संग-साथ में रह कर पचास प्रतिशत मुक्ति हो गयी है, बाकी पचास प्रतिशत के लिए हमें काम करना है। और वही काम हम नहीं कर पा रहे हैं। जबकि मेहनत हमें ही करना होगा, दूसरा उसमें कोई सहायक नहीं हो सकता है। और तब तक पूरी मेहनत नहीं होगी, जब तक लाभ निश्चय नहीं होगा। लाभ का निश्चय हो जाये कि ध्यान मेरे जीवन का परम उद्देश्य है, इसके बिना जीवन अधूरा है, ध्यान के बिना आत्मशांति, आत्मतृप्ति, आत्मसंतोष नहीं मिल सकता, तब उसके लिए समय भी निकल आयेगा और निरंतर प्रयत्न, साधना-अभ्यास भी होने लगेगा।

ध्यान मन की सहज अवस्था है। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा—संतो सहज समाधि भली। सहज का अर्थ है स्वाभाविक, जिसमें किसी प्रकार का कोई आरोपण, कोई बनावट न हो। जितना हम अपने आप को प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति से जोड़ते जाते हैं, उतनी हमारी सहजता, स्वाभाविकता मिटती चली जाती है। और यही दुख, पीड़ा, अशांति, तनाव का कारण है। जीवन रहते तक प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति का संबंध है और उपयोग एवं व्यवहार है, किन्तु ये क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। न प्राणी स्थिर रहते हैं, न पदार्थ और न परिस्थिति। सहज न रहने पर इनमें अनुकूलता-प्रतिकूलता का आरोपण कर मन राग-द्वेष में डूबा अशांत बना रहेगा। और राग-द्वेष में डूबा अशांत मन ध्यान में प्रवेश नहीं कर सकता। व्यवहार-काल में प्राणी, पदार्थ, परिस्थितियों के बीच व्यवहार करते हुए मन को राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारों से मुक्त निर्विकार रखे। निर्विकार मन से ही संयम-साधना का काम ठीक से होता है, फिर अभ्यास करते-करते ऐसी अवस्था आती है, जब मन निर्विचार-मौन हो जाता है। यही मन की सहज अवस्था है और यही मन का मौन हो जाना है। अतः मन का मौन हो जाना ही ध्यान है।

जीव और जगत का संबंध करने वाला, दोनों को जोड़ने वाला मन है। यदि मन मौन हो जाये, शांत हो जाये, तो जीव और जगत का संबंध टूटकर जीव अपने आप शुद्ध-बुद्ध रह जाये, जैसा कि मूलतः वह है। व्यवहार-काल में मन का निर्विकार रहना और साधना-अभ्यास काल में निर्विचार हो जाना मन का मौन हो जाना है।

—धर्मेन्द्र दास

अहिंसा

लेखक—महात्मा गांधी

अहिंसा का अर्थ होता है—प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा।

भारत को अहिंसा पर चलने की सलाह देने का मेरा कारण यह नहीं है कि वह निर्बल है, बल्कि यह है कि उसे अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य का भान है। जिन ऋषियों ने अहिंसा धर्म की खोज की थी, वे न्यूटन से अधिक प्रतिभा संपन्न थे। वे शस्त्रों का प्रयोग करना जानते हुए भी उनकी व्यर्थता जान गये थे और इसी कारण उन्होंने त्रस्त संसार को यह शिक्षा दी थी कि उसे मुक्ति हिंसा से नहीं अहिंसा से मिल सकती है।

हमारा मानव समाज अपनी समस्त विभिन्नताओं के साथ देखने वाले को एक सुंदर समष्टि के रूप में दिखना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब अपनी भिन्नताओं के बावजूद हम एक दूसरे के प्रति प्रेम रखना और परस्पर सहिष्णुता बरतना शुरू करें। अतः यद्यपि मैं विवेकशून्य कट्टरवादिता में निपट जड़तापूर्ण अज्ञान देखता हूं, फिर भी उस कट्टरता के प्रति असहिष्णु नहीं बनता। इसीलिए मैंने दुनिया के सामने अहिंसा का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। मेरा मानना है कि जो व्यक्ति इस धरती पर धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहता है और इसी जन्म में इस पृथ्वी पर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसे हर रूप में, हर प्रकार से अपने हर कृत्य में अहिंसक रहना चाहिए।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है न मारना। किन्तु मेरे हिसाब से उसका अर्थ व्यापक है। यदि मैं उसका अर्थ न मारना करता तो यह शब्द मुझे जिन ऊंचे, अनन्त ऊंचे मनोमय लोकों तक ले जाता है, उनतक मैं कभी नहीं पहुंच पाता। अहिंसा का वास्तव में यह अर्थ है कि आप किसी का मन न दुखाएं। जो अपने को आपका शत्रु मानता है, उसके बारे में भी कोई अनुदार विचार मन में न रखें। क्योंकि जो व्यक्ति अहिंसा का सिद्धांत मानता है, उसके लिए तो किसी को अपना शत्रु मानने की गुंजाइश ही नहीं है। वह शत्रु का अस्तित्व मानता ही नहीं है, किन्तु ऐसे लोग हो सकते हैं; जो उसे अपना शत्रु माने, इसमें तो उसका कोई वश नहीं है।

सत्य और अहिंसा ही हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमो धर्मः' इससे भारी शोध दुनिया में दूसरा नहीं है। जब तक हम संसार के व्यवहारों में रहते हैं, जब तक हमारी आत्मा का व्यवहार शरीर के साथ रहता है, तब तक कुछ-न-कुछ हिंसा हमसे होती ही रहती है, पर जिस हिंसा को हम छोड़ सकते हैं, उसे छोड़ देना चाहिए। जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिए कि उस धर्म में उतना ही ज्यादा सत्य है।

जब कोई पुरुष यह कहता है कि मैं अहिंसापरायण हूं; तब उससे यह आशा की जाती है कि यदि उसे कोई हानि पहुंचाए, तो वह उसपर क्रोध न करे, उसका नुकसान न चाहे, बल्कि उसकी भलाई ही चाहे। न वह उसके प्रति अनर्गल प्रलाप करेगा और न उसे किसी तरह की शारीरिक चोट ही पहुंचाएगा। इस तरह अहिंसा पूर्ण निर्दोषता की अवस्था है और पूर्ण अहिंसा का अर्थ है, प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव। इसलिए अहिंसा में मनुष्य से नीचे की कोटि के प्राणियों यहां तक कि हानिकारक कीड़े-मकोड़े और पशुओं का समावेश है। उनकी सृष्टि हमारी विनाशक प्रवृत्तियों का पोषण करते रहने के लिए नहीं हुई है। यदि हम सृष्टि कर्ता के हेतु को समझ पाते तो हमें इस बात का पता लग जाता कि उसकी सृष्टि में उन जीवों का उचित स्थान क्या है? अतएव अहिंसा का क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव ही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दूशास्त्र, क्या बाइबिल और क्या कुरान सब जगह मुझे तो यही दिखाई पड़ा है।

अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्य की ओर स्वभावतः परंतु अनजाने बढ़ रही है। मनुष्य जब स्वयं निर्दोषता की साक्षात मूर्ति बन

जाता है, तब वह कुछ दैवी पुरुष नहीं हो जाता। उसी अवस्था में वह सच्चा मनुष्य बनता है।

अहिंसा से मेरा आशय कायरता से नहीं है। मेरा निश्चित मत है कि यदि विकल्प केवल कायरता और हिंसा के बीच हो तो हिंसा चुनी जानी चाहिए तथापि मैं क्षमाशीलता को वीरता का भूषण मानता हूं।

अहिंसा और सत्य समस्त धर्मों के समकोण हैं। जो आचार इस कसौटी पर खरा न उतरे वह त्याज्य है। इसमें कोई भी शंका नहीं कर सकता। अधूरे आचार की इजाजत चाहे जो हो किन्तु अहिंसा धर्म पालन करने वाले को तो निरंतर जागरूक रहकर अपने हृदय की बात को बढ़ाते और प्राप्त छूटों के क्षेत्र को संकुचित करते ही जाना चाहिए। भोग में धर्म है ही नहीं। संसार का ज्ञानपूर्वक त्याग ही मोक्ष प्राप्ति है। संसार का पूर्ण त्याग हिमालय के शिखर पर चले जाने में भी नहीं है। हृदय की गुफा सच्ची गुफा है, उसमें छिपकर और सुरक्षित रहता हुआ मनुष्य संसार में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहकर अनिवार्य प्रवृत्तियों में भाग लेते हुए विचरण कर सकता है।

अहिंसा का अर्थ है—प्रेम, दया, क्षमा। अहिंसा एक महाव्रत है। वह तलवार की धार पर चलने से अधिक कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालन करना असंभव ही माना जाएगा। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ है—त्याग और ज्ञान।

सबसे बड़ी ताकत जो मानव को प्रदान की गई है, वह है—अहिंसा। सत्य उसका एकमात्र लक्ष्य है, क्योंकि ईश्वर सत्य से इतर और कुछ नहीं है। लेकिन सत्य की प्राप्ति अहिंसा के अतिरिक्त और किसी उपाय से नहीं हो सकती।

जो गुण मानव और अन्य सभी पशुओं के बीच का अंतर स्पष्ट करता है, वह है मानव में अहिंसक रह सकने की क्षमता, और मानव जिस हद तक अहिंसा का पालन करता है, उसी हद तक अपने लक्ष्य के निकट तक पहुंचता है, उससे आगे नहीं। निस्सन्देह उसको कई और गुण भी प्रदान किये गये हैं। परंतु यदि वे मुख्य गुण अर्थात अहिंसा की भावना के विकास में मदद नहीं देते तो वे उसे पशु से भी निचले उस स्तर तक घसीटकर ले जाने का काम ही करते हैं जिस स्तर से वह अभी-अभी उठकर आया है।

अहिंसा का मार्ग अन्य सभी मार्गों की अपेक्षा कठिन है। सत्य मार्ग नहीं, वह तो ध्येय है। वहां तक पहुंचने का एकमात्र मार्ग अहिंसा है। अतः यह आसान हो भी कैसे सकता है? अभी तो हम विचारों की अहिंसा तक भी नहीं पहुंच सके हैं। कभी-कभी जब हमें अपना धर्म दीपक की भांति स्पष्ट दिखाई देता है, तब भी उसका पालन करने की शक्ति हममें नहीं होती है। ऐसी स्थिति में इतना ही बहुत है कि यथाशक्ति आचार और विचार में अहिंसा की रक्षा करें और आनन्द से रहें।

मेरा रास्ता साफ है। हिंसात्मक कामों में मेरा उपयोग करने का कोई प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। मेरे पास कोई गुप्त उपाय नहीं है। मैं सत्य को छोड़कर किसी कूटनीति को नहीं जानता। मेरा एक ही अस्त्र है—अहिंसा। संभव है कि मैं अनजाने कुछ देर के लिए गलत रास्ते भटका लिया जाऊं। किन्तु यह हमेशा के लिए नहीं चल सकेगा।

मदान्ध होकर दूसरों पर आक्रमण करने की अपेक्षा ऐसी परिस्थितियों में अहिंसावादी सुधारक अन्तर्मुख हो जाता है। वह परिस्थिति विशेष में फंसे हुए सारे लोगों में एक ही भगवान का दर्शन करता है और अपने विरोधियों के तथा स्वयं अपने उद्धार के लिए तपाचरण करने लगता है। बुराई से जूझता हुआ उसमें फंसे सारे लोगों का सहायक बनता है। उसकी विनम्रता उसमें शक्ति का संचार करती रहती है। यह विनम्रता ही हमारे शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक बल को विशृंखलित करने के बजाय सुगठित करती है। यों भौतिक दृष्टि से इस विशाल विश्व में हमारी कोई हस्ती नहीं है। विश्व, ब्रह्माण्ड, तारा, ग्रह, सूर्य, इत्यादि में हमारा स्थान कितना नगण्य है।

मैं ऐसा मानता हूं कि अहिंसा धर्म जिस मूल मान्यता से उत्पन्न होता है, वह यह है कि एक की उन्नति

में सबकी उन्नति है और एक की अधोगति में सबकी अधोगति है।

अहिंसा के मायने है प्रेम का समुद्र, अहिंसा के मायने है वैरभाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरुता नहीं होती, डर-डर कर भागना भी नहीं होता, अहिंसा में तो दृढ़ता, वीरता, अडिगता होनी चाहिए।

अगर अहिंसा धर्म सच्चा धर्म हो, तो हर तरह व्यवहार में उसके आचरण का आग्रह करना भूल नहीं, बल्कि कर्तव्य है। व्यवहार और धर्म के बीच विरोध नहीं होना चाहिए। धर्म विरोधी व्यवहार छोड़ देने योग्य है। जहां दया नहीं वहां अहिंसा नहीं। दया अहिंसा की कसौटी है, अहिंसा का मूर्त रूप है। अतः यों कह सकते हैं कि जिसमें जितनी दया है, उसमें उतनी ही अहिंसा है। मुझ पर आक्रमण करने वाले को न मारूं, उसमें अहिंसा हो भी सकती है और नहीं भी। डर कर उसे अगर न मारूं तो यह अहिंसा नहीं हो सकती है। दयाभाव से ज्ञानपूर्वक न मारने में ही अहिंसा है।

अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्‌गुण है। कायरता सबसे बड़ा दुर्गुण है। विशुद्ध अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती है।

किन्तु अहिंसा के बिना सत्य की शोध असंभव है। अहिंसा और सत्य एक दूसरे से उसी तरह संलग्न हैं जैसे एक सिक्के के दो पहलू। फिर भी अहिंसा को साधन माने और सत्य को साध्य। साधन अपने हाथ की बात है, इसी से अहिंसा परम धर्म हुआ। सत्य ईश्वर हुआ। साधन की चिन्ता करें, तो किसी दिन साध्य के दर्शन तो होंगे ही। इतना निश्चय किया, तो मानो जग को उस हद तक जीत लिया। हमारे मार्ग में चाहे जो संकट आएं, बाह्य दृष्टि से देखते हुए हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई पड़े तो भी हम विश्वास न छोड़ें और एक यही मंत्र जपें कि सत्य ही सब कुछ है—वही ईश्वर है, उसका साक्षात्कार करने का एक ही मार्ग है, एक ही साधन है—और वह है अहिंसा। मैं उसे कभी नहीं छोड़ूंगा, जिस सत्यरूपी ईश्वर के नाम यह प्रतिज्ञा की है, वही इसका पालन करने का बल दें।

अहिंसा दुर्बल का नहीं, बलवान का शस्त्र है। अहिंसा का अर्थ है—अपराध को क्षमा करना और बदला न लेना। क्षमा वीरस्य भूषणम्।

अहिंसा कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह हृदय का सर्वोत्तम गुण है और उसे प्रयत्नपूर्वक पा लेने पर ऐसा मालूम होता है कि वह स्वाभाविक गुण है। सचमुच वह वैसा ही है और प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति को आश्चर्य होता है कि उसे पाने में उसे किसी प्रकार का कष्ट क्यों उठाना पड़ा? हमारे भीतर का पशु कहता है कि घूसे के बदले घूसे से बढ़कर स्वाभाविक और क्या है और हमारे अंदर बैठा हुआ मनुष्य कहता है कि घूसा मारने वाले को क्षमा करने से बढ़कर अधिक स्वाभाविकता और अधिक मानवता क्या है?

अहिंसा का मतलब अपने प्रति कृपण और दूसरों के प्रति उदार।

'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात' यह व्यावहारिक वचन नहीं सिद्धांत है। प्रियम् का अर्थ है अहिंसक। अहिंसक के बारे में ऐसा हो सकता है कि बोलते समय वह कठोर लगे, परंतु परिणाम में वह अमृतमय लगना ही चाहिए। यह अहिंसा की अनिवार्य कसौटी है।

जिस व्यक्ति के मन में अहिंसा पालन करने का उत्साह है, उसे चाहिए कि वह अपने हृदय में झांके और अपने पड़ोसी की ओर देखे। यदि उसके मन में द्वेष भरा हो तो वह समझ ले कि अहिंसा की प्रथम सीढ़ी ही नहीं चढ़ पाया है और अपने पड़ोसी के प्रति, साथी के प्रति अहिंसा का व्यवहार नहीं करता। वह अहिंसा से हजारों योजन दूर है।

यदि मुझमें अहिंसा सचमुच होगी तो उसकी छूत लगे बिना हरगिज नहीं रहेगी। मुझे अपने पर कम श्रद्धा है, लेकिन अहिंसा पर अटूट श्रद्धा है। जगत ने इस महान सिद्धांत को जान तो लिया है परंतु उसका आचरण बहुत थोड़ा किया है। मुझे तो रोज उसके नये घूंट पीने को मिलते हैं, क्योंकि मेरे लिए तो वही कल्पवृक्ष है।

इस दुनिया में मेरे लिए और कुछ संभव नहीं है, क्योंकि सत्यनारायण से मिलने का दूसरा कोई मार्ग मुझे मिला ही नहीं और उसके मिले बिना जीवन व्यर्थ लगता है। इसीलिए अहिंसा का मार्ग कठिन हो या सरल—मुझे तो उसी मार्ग से जाना है। यदि मेरी मृत्यु के बाद मारकाट ही मच जाए तो समझना कि मेरी अहिंसा अत्यल्प अथवा झूठी थी। अहिंसा का सिद्धांत कभी झूठा नहीं हो सकता अथवा यह भी हो सकता है कि अहिंसा सिद्ध करने से पहले हमें रक्त की वैतरणी से होकर गुजरना पड़े।

मनुष्य जाति के पास जो सबसे बड़ी शक्ति है वह अहिंसा ही है। बुद्ध की जैसी अहिंसा का परिणाम तो चिरकाल कायम रहता है, इतना ही नहीं बल्कि समय के साथ-साथ बढ़ता जाता है। उस पर जितना अमल होता है, वह उतना ही पुरअसर और अक्षय सिद्ध होता है और अंत में सारा संसार हक्का-बक्का होकर चिल्ला पड़ता है कि अरे, यह तो चमत्कार हो गया।

अहिंसा भाव से ओत-प्रोत होने के लिए हमें ईश्वर में जीवन्त श्रद्धा होनी चाहिए। फल की तनिक भी आशा किये बिना निरंतर सेवा करते रहने से ही मन में अहिंसा का भाव उदय होता है। इसमें मनुष्य सिर्फ अपना अर्पण करता चला जाता है और यह अपना पुरस्कार आप है। निष्काम भाव से की गई सेवा केवल मित्रों के लिए नहीं होती बल्कि शत्रुओं के लिए भी होती है।

अहिंसा एक उच्चतम कोटि का क्रियाशील सिद्धांत है। यह आत्मिक बल या हमारे भीतर स्थित ईश्वरत्व की शक्ति है। अपूर्ण मनुष्य उस समूचे सारतत्त्व को समझने में असमर्थ है। वह तो उसकी पूरी-पूरी ज्वाला को सह भी नहीं सकता—किन्तु जब उसका एक अत्यन्त सूक्ष्म अंश भी हमारे भीतर सक्रिय हो उठता है, तो अद्‌भुत परिणाम दिखाता है। आकाशवासी सूर्य समूचे विश्व को अपनी जीवनदायिनी ऊष्मा से भर देता है, किन्तु अगर कोई उसके बहुत निकट पहुंच जाये, तो उसे जलाकर भस्म कर देगा। ठीक यही बात ईश्वरत्व की भी है। हम जिस हद तक अहिंसा को अपना लेंगे उस हद तक हम ईश्वर जैसे होंगे किन्तु हम पूरी तरह भगवान तो बन ही नहीं सकते। अहिंसा का असर रेडियम जैसा है। शरीर के किसी घातक रूप से अभिवृद्ध अंग में यदि रेडियम का अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा डाल दिया जाये, तो वह लगातार चुपचाप और अनवरत रूप से तब तक अपना असर करता रहता है, जब तक मांस के समूचे रोगग्रस्त कोशों की परत स्वस्थ नहीं बन जाती। इसी प्रकार सच्ची अहिंसा का छोटा-सा अंश चुपचाप, सूक्ष्म और अदृश्य रूप से अपना काम करके समूचे समाज को प्रभावित कर दिया है।

युग बदलता है और व्यवस्थाएं जर्जर हो जाती हैं। अन्ततः केवल अहिंसा और अहिंसा पर आधारित वस्तुएं ही चिरस्थायी होंगी।

हम अपने मित्रों और अपनी बराबरी के लोगों से प्रेम करते हैं, परंतु एक निर्दय तानाशाह के प्रति हमारे मन में प्रतिक्रिया हिंसात्मक होने पर भय की और अहिंसात्मक होने पर दया की होती है। अहिंसा भय नहीं जानती। यदि मैं सच्चा अहिंसावादी हूं तो मुझे तानाशाह पर दया आएगी और मैं कहूंगा कि उसे ज्ञान नहीं है कि मानव को कैसा होना चाहिए?

हर हालत में अहिंसा को मुक्ति का साधन बनना चाहिए। परंतु आपकी उसमें जीवन्त आस्था होनी चाहिए। आपके चारों ओर जब घटाटोप अंधेरा हो, तब भी आपको आशा नहीं छोड़नी चाहिए। जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास करता है, वह एक जीवन्त ईश्वर में विश्वास करता है, वह पराजय नहीं स्वीकार करता है।

अहिंसा का मतलब है—असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ कष्ट सहन की असीम क्षमता है।

जिसमें सच्ची अहिंसा की वृत्ति है, उसे असहाय महसूस करने की जरूरत नहीं है। हिंसा के आगे असहाय महसूस करना, अहिंसा नहीं कायरता है। अहिंसा को कायरता से डगमग नहीं करना चाहिए।

आपकी अहिंसक वृत्ति आपको ऐसा बना देगी, जिससे उस उद्दण्ड व्यक्ति के दुर्व्यवहार का आप पर कोई असर ही नहीं होगा और फलतः वे अपमानजनक शब्द उसके मुंह तक ही सीमित रह जायेंगे और आप उनसे अछूते रहेंगे।

अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है, तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो उसका सेवक हूं।

अहिंसा एक सक्रिय शक्ति है। क्या तुम यह महसूस नहीं करते कि जब अहिंसा का बोलबाला होता है, तो भौतिकतावादी का स्थान गौण हो जाता है, रास्ते बदल जाते हैं और अहिंसक युद्ध में श्रम, संपत्ति व नैतिकता की बरबादी नहीं होती।

आप मेरे पास यदि यह कहते हैं कि—आपने अहिंसा की प्रतिज्ञा ले लिया था, इसलिए बहनों की रक्षा नहीं कर सके, तो मैं आपको माफ नहीं करूंगा। अहिंसा को कायरता का ढाल तो हरगिज नहीं बनाना चाहिए। वह तो बहादुरों का हथियार है। ऐसे जुल्मों को बेबसी से देखते रहने की अपेक्षा तो मैं यह ज्यादा पसंद करूंगा कि आप हिंसक तरीके से लड़ते-लड़ते मर मिटें। सच्चा अहिंसक पुरुष ऐसे अत्याचारों की कहानी कहने को कभी जिन्दा नहीं रहेगा। वह तो अहिंसक तरीके से जूझते हुए अपनी जान पर खेल जाएगा, मर मिटेगा।

यदि हम अपने शरीर को सत्य के पालन और परोपकार के निमित्त अनुकूल बनाना चाहते हैं तो हमें पहले ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य आदि गुणों को विकसित करके अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिए। अहिंसा का अर्थ होता है—प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा।

प्रस्तुति–सुजाता

(सर्व सेवा संघ द्वारा प्रकाशित 'गांधी की नैतिकता से' साभार)

सुन्दरता का राज

लेखक—गुरुक्षेम दास

मन की प्रसन्नता से शरीर का सौंदर्य भी बढ़ता है। शारीरिक सौंदर्य को बढ़ाने के लिए मन का प्रसन्न होना बहुत जरूरी है। अनेक प्रकार के सौंदर्य प्रसाधन क्रीम-पाउडर आदि का चेहरे पर लेप करके अपने सौंदर्य को नहीं बढ़ा सकते। आपका मन प्रसन्न है तो उसकी झलक आपके चेहरे में दिखाई पड़ती है। आपका चेहरा सुन्दर नजर आने लगता है। व्यवहार भी सुन्दर और सुचारु रूप से होने लगता है।

शरीर और मन का अटूट सम्बन्ध है। मन में जो घटित होता है उसका सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है। आप इसे सहज देख सकते हैं। मन जब तनावग्रस्त होता है तब चेहरे का सौंदर्य गायब हो जाता है और जब मन प्रसन्न होता है तब चेहरा खिला-खिला नजर आता है। प्रसन्न चेहरा मनमोहक लगता है। मन प्रसन्न है तो क्रीम, पाउडर, सेंट या अन्य प्रसाधनों की कोई आवश्यकता नहीं। मन को प्रसन्न रखने के लिए सेवा, स्वाध्याय और साधना की आवश्यकता है। साथ ही चिंतन को बदलना होगा। मन को प्रसन्न रखने के लिए धन खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। अपितु मन को प्रसन्न रखने के लिए जिन लोगों के बीच हम रहते हैं घर में, परिवार में, समाज में उनसे सामंजस्य स्थापित करना होगा। आपका मन कैसा है व्यवहार में साफ दर्पण की भांति दिखाई पड़ता है।

भावानुसारेण मानवः

भाव के अनुरूप आदमी का व्यवहार होता है, क्रियाकलाप होता है। आपके घर में कोई ऐसा मेहमान आ जाये जो आपको पसन्द नहीं है या समयानुकूल नहीं है तो बाहर से उसके प्रति आपका व्यवहार चाहे जैसा रहे, परंतु आपका चेहरा बता देगा कि आप उसे पसंद

नहीं कर रहे हैं। परंतु आपका कोई मित्र आ जाये या आपके गुरु-पीर आ जायें, आपके मनोनुकूल मेहमान आ गये तो आपका चाल-चलन, बोली-व्यवहार सब कुछ सुन्दर ढंग से होने लगेगा क्योंकि आपका मन प्रसन्नता से भर गया।

मन कैसा है, चेहरे से साफ झलकने लगता है। आप किसी ऐसे व्यक्ति को देखें जो आपके बहुत नजदीकी हो, जो सामान्य चेहरे-मोहरे वाला हो, उसे आप हंसते हुए देखें, फिर हंसी के बगैर देखें और गुस्सा की स्थिति में देखें। तुलना करने पर आपको स्पष्ट तौर पर अन्तर समझ में आ जायेगा। आप देखेंगे कि हंसी की मुद्रा में साधारण चेहरा कितना सुन्दर नजर आता है और सामान्य स्थिति में कैसे लगता है तथा क्रोध की स्थिति में आंखें लाल, भौंहें तनी हुई होती हैं और पूरे शरीर में कम्पन होने लगता है। कहा गया है—

खैर खून खांसी खुशी, बैर प्रीति मद पान।
रहिमन दाबे न दबे, जानत सकल जहान॥

चिकित्सकों का मानना है कि हंसी से सौंदर्य में वृद्धि होती है, मांसपेशियों की कसरत हो जाती है और चेहरे का व्यायाम हो जाता है। रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है, इंडार्फिन्स नामक हार्मोन प्रवाहित होने लगता है तथा त्वचा के छिद्रों की ओर रक्त प्रवाह भी बढ़ जाता है। इस कारण चेहरे में खास किस्म की चमक आने लगती है। इतना ही नहीं हंसने से नेत्रों की अश्रुग्रंथि भी सक्रिय होती है।

ध्यान भी व्यक्ति की सुन्दरता में कारण होता है। ध्यान करने के बाद आदमी के चेहरे और आंखों में एक नई चमक आ जाती है। उसके हाव-भाव व मुद्राएं पूर्व की तुलना में कहीं ज्यादा आकर्षक हो जाती हैं। उसका कारण है ध्यान करने के बाद मन शांत हो जाता है। मानसिक चिंताएं, तनाव समाप्त हो जाते हैं और शरीर को पूर्ण विश्राम मिल जाता है। परन्तु जो लोग ध्यान नहीं करते उनके माथे पर कम उम्र में ही झुर्रियां पड़ने लगती हैं और तमाम चिंताओं से ग्रस्त हो जाते हैं।

आत्मविश्वास से भी आदमी के चेहरे पर असर पड़ता है। कोई आदमी शारीरिक रूप से कितना ही कुरूप हो लेकिन वह कल्पना करे कि मैं सुन्दर हूं, अच्छा हूं, स्वस्थ हूं इससे आत्मविश्वास पैदा होता है और हीनभावना समाप्त होती है। अपना व्यक्तित्व ही मौलिक होता है जो अन्दर से आता है। शारीरिक सुन्दरता न भी हो किन्तु जीवन में शील, संयम, नैतिकता, पवित्रता, कोमलता, उदारता, प्रेम, श्रद्धा और सदाचार युक्त जीवन हो तो भी लोग श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखते हैं।

कहा जाता है महान सुकरात शरीर की दृष्टि से सुन्दर नहीं थे, कुरूप थे। फिर भी वे अपना चेहरा दर्पण में देखा करते थे। एक दिन किसी ने पूछ लिया कि आप अपना कुरूप चेहरा दर्पण में क्यों देखते हैं? उन्होंने कहा था—"कुरूप मनुष्य को अपना चेहरा दर्पण में इसलिए देखना चाहिए कि शरीर जैसा कुरूप है वैसा ही मन तो कुरूप नहीं है और रूपवान को इसलिए दर्पण देखना चाहिए कि जैसा चेहरा सुन्दर है वैसा मन सुन्दर है या नहीं।" अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के लिए भी कहा जाता है चेहरे से वे कुरूप थे। एक छोटी बच्ची अपने पिता से बार-बार कहती कि पापा, हम अपने राष्ट्रपति से मिलेंगे, उनको देखेंगे। पिता कहता—बेटी, वे अच्छे नहीं हैं, देखने योग्य नहीं हैं। एक दिन बच्ची ने जिद्द पकड़ ली। पिता विवश होकर छोटी बच्ची को लेकर राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन से मिलने गये। जब लिंकन ने उस लड़की को देखा तो उसे उसके पिता की गोद से लेकर अपनी गोद में बैठाकर प्यार करने लगे, उससे हंस-हंस कर बात करने लगे। लड़की लिंकन की गोद में बैठी-बैठी कहती है कि पापा, आप तो कहते थे राष्ट्रपति अच्छे नहीं हैं। हमारा राष्ट्रपति तो बड़ा सुन्दर है, बड़ा प्यारा है। यही बात अष्टावक्र के लिए आता है। अष्टावक्र आठों अंगों से टेढ़े-मेढ़े थे किन्तु ज्ञान-आचरण के कारण विदेहराज जनक ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया था। आदमी चेहरे से महान नहीं होता, अपने सुंदर गुण, कर्म, स्वभाव, आचरण से महान होता है। एक गीत है—

"काले हैं तो क्या हुआ दिल वाले हैं"। सार-सत्य कहीं से भी लिया जा सकता है।

व्यवहार वीथी

ढाई आखर प्रेम का

मिठाई में जो स्थान चीनी का है, नमकीन में जो स्थान नमक है, मनुष्य के जीवन में वही स्थान प्रेम का है। खोवा से चाहे आप बरफी बनायें चाहे पेड़ा, चाहे गुलाबजामुन बनायें चाहे कलाकंद, यदि उनमें चीनी नहीं है तो उन्हें मिठाई नहीं कहा जा सकता। बेसन से चाहे आप जो भी बना लें, यदि उनमें नमक नहीं है तो उन्हें नमकीन नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार चाहे कोई नेता, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, जज, कलेक्टर, साधु, लेखक, प्रवक्ता कुछ भी बन जाये यदि उसके मन में प्रेम नहीं है तो उसे सच्चा मनुष्य नहीं कहा जा सकता। प्रेम के अभाव में न तो वह सुखपूर्वक जीवन जी सकता है और न प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है। प्रेम जीवन रसायन है। प्रेम जीवन को पूर्ण बनाता है।

मनुष्य जहां भी जिन लोगों के साथ रहता है यदि उनमें परस्पर एक दूसरे के लिए प्रेम नहीं है तो उसे चाहे जितना भी धन-ऐश्वर्य मिल जाये वह सुख एवं प्रसन्नता पूर्वक जीवन नहीं जी सकता। प्रेम के अभाव में कोई भी चीज मनुष्य को सुख नहीं दे सकती। जैसे प्राणविहीन शरीर का सारा शृंगार निरर्थक एवं समय की बरबादी है वैसे प्रेमविहीन सारा ऐश्वर्य एवं उपलब्धि निरर्थक है। प्रेम जीवन का शृंगार है।

प्रेमपूर्वक खिलाई गई सूखी रोटी में भी खाने वाले को छप्पन व्यंजन का आनंद मिलता है तो बिना प्रेम के तिरस्कारपूर्वक परोसे गये छप्पन व्यंजन भी जहर तुल्य जान पड़ते हैं। महत्त्व इस बात का नहीं है कि आप किसको कैसा कितना कीमती उपहार दे रहे हैं किन्तु महत्त्व इस बात का है कि उस उपहार को प्रेमपूर्वक प्रसन्न मन से दे रहे हैं या मात्र खानापूर्ति के लिए दिखावा के लिए और टूटे-बुझे मन से उदासीपूर्वक दे रहे हैं। प्रेमपूर्वक प्रसन्न मन से किसी को सामान्य-साधारण चीज देकर आप उसके मन में अपने लिए स्थान बना सकते हैं, उसके मन को जीत सकते हैं तो उदास मन से कष्टपूर्वक मात्र दिखावा के लिए किसी को कीमती वस्तु-उपहार देकर भी उसे प्रसन्न नहीं कर सकते।

प्रेम का क्षेत्र ऐसा है जिसमें देने वाला और पाने वाला दोनों का मन प्रसन्नता से भर जाता है। बाहरी चीजें तो जितना देते-बांटते जायें उतना घटती चली जाती हैं, किन्तु प्रेम को तो जितना देते बांटते जायें उतना बढ़ता जाता है, बल्कि न देने-न बांटने से यह घट जाता है। परस्पर में प्रेम होने पर फूस की झोपड़ी में भी स्वर्ग-सुख का अनुभव किया जा सकता है और प्रेम का अभाव सुविधापूर्ण भव्य-भवन को नरक बना देता है।

प्रश्न होता है कि प्रेम क्या है? प्रेम किसे कहते हैं? उत्तर है—दूसरा मेरे लिए क्या कर रहा है, मुझे क्या दे रहा है, उसे मेरे लिए क्या करना चाहिए इसकी परवाह किये बिना मैं दूसरों के लिए क्या कर सकता हूं, उन्हें क्या दे सकता हूं और उनके लिए क्या करना चाहिए ऐसा भाव रखकर उन्हें अधिक से अधिक देने का प्रयास, प्रेम है। प्रतिफल की इच्छा रखे बिना दूसरों को अधिक-से-अधिक देने का भाव और व्यवहार प्रेम है। प्रेम में पाने का भाव मिट जाता है केवल देने का भाव रह जाता है। प्रेम के केन्द्र में 'स्व' न होकर 'पर' होता है। इसमें दूसरों की प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता रहती है। स्व के कष्ट, दुख, पीड़ा को भूलकर दूसरों के सुख, प्रसन्नता एवं हित को केन्द्र में रखना और वैसा ही व्यवहार करना प्रेम है। इसी प्रेम के लिए ही सद्गुरु कबीर ने कहा है—ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

प्रेम का अर्थ है हृदय का कोमल, उदार एवं सरल-सरस होना। इसमें दूसरों के सुख को देखकर ईर्ष्या एवं उन्नति को देखकर जलन नहीं होती, किन्तु प्रसन्नता होती है और यह भाव होता है कि सब ऐसी उन्नति करें और सुखी होवें। प्रेम का अर्थ है निर्वैरत्व। किसी के लिए,

यहां तक विरोधी कहे जाने वाले के लिए भी वैर-विरोध का भाव न होना, किन्तु कल्याण-कामना होना। सच तो यह है कि कोई हमारा विरोधी है भी नहीं। जिसकी जैसी समझ बुद्धि और निश्चयता है वह वैसा बात-व्यवहार कर रहा है। यदि कोई गलत बात-व्यवहार कर रहा है तो वह भूला है और दया-क्षमा का पात्र है, घृणा का नहीं। उसके प्रति दया, क्षमा और प्रेम का व्यवहार करके ही हम अपने मन को निर्मल रख सकते हैं और प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकते हैं। किसी से वैर-विरोध रखना, घृणा-द्वेष करना तो अपना ही अहित करना और अपने को ही दुखी करना है। प्रेम में घृणा, द्वेष, वैर-विरोध की गुंजाइश कहां। प्रेम तो निर्वैरत्व की साधना है। इसमें तो द्वैत मिटकर 'जित देखूँ तित प्राण हमारो' का भाव होता है।

किसी से अपने लिए प्रतिकूल एवं गलत बात-व्यवहार पाकर उसके साथ गलत बात-व्यवहार करने का अर्थ है मन में प्रेम का अभाव। सच्चे प्रेम में तो 'जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल' की स्थिति होती है। इसमें तो स्वयं कष्ट एवं घाटा उठाकर दूसरों को सुख पहुंचाने एवं सेवा करने का भाव एवं प्रयत्न होता है। इस संदर्भ में महावीर स्वामी एवं संत ईसा के जीवन की निम्न घटनाएं अत्यंत प्रासंगिक एवं प्रेरणादायी हैं—

महावीर स्वामी एक बार जंगल में खड़े मौन तप कर रहे थे। एक किसान अपने खोये हुए बैलों को खोजते हुए वहां पहुंचा और महावीर स्वामी से पूछा कि आपने मेरे बैलों को इधर जाते हुए देखा है। कई बार पूछने पर भी मौन होने के कारण महावीर स्वामी से कोई उत्तर न मिलने पर किसान आगे बढ़ गया। बैलों को खोजते हुए किसान कुछ देर बाद जब वापस वहां आया जहां महावीर स्वामी तप कर रहे थे तब उसने अपने बैलों को वहां चरते पाया। इससे किसान ने समझा कि यह तपस्वी कोई चोर है और मेरे बैलों को चुराने के लिए ही यह मौन एवं तप का ढोंग कर रहा है। उसने कुपित होकर महावीर के दोनों कानों में लकड़ी की कील ढोंक दी। इससे कानों से रक्त बहने लगा, फिर भी महावीर मौन ही रहे। तप करते-घूमते हुए जब वे एक गांव में पहुंचे तब एक वैद्य ने उनसे निवेदन किया कि वे कुछ देर रुक जायें तो वह कानों से कील को निकाल देगा। जब वैद्य ने महावीर के कानों से कील को निकाला तब कानों से पुनः रक्त की धार बह निकली और महावीर की आंखों में आंसू आ गये।

महावीर की आंखों में आंसू देखकर वैद्य ने कहा—क्या स्वामी जी, दर्द ज्यादा होने लगा है? अब तो कील निकल जाने से दर्द कम हो जायेगा। तब महावीर स्वामी ने बड़ा ही मार्मिक उत्तर दिया—दर्द तो कील के गड़े रहने पर भी हो रहा था और अब निकल जाने पर भी हो रहा है। मेरी आंखों में आंसू आने का कारण मेरा अपना दर्द नहीं है, किन्तु यह सोचकर आंखों में आंसू आ गये कि मैंने तो किसी प्रकार इस दर्द को सहन कर लिया। लेकिन जिसने मेरे कानों में कील ठोंका है उसके प्रतिफल में जब कभी उसके कानों में कील ठोंका जायेगा तब वह बेचारा उस दर्द को कैसे सह पायेगा। उसे कितनी पीड़ा होगी। उसकी पीड़ा की कल्पना कर मेरी आंखों में आंसू आ गये।

यह है प्रेम की पराकाष्ठा। अपनी पीड़ा की परवाह नहीं, किन्तु जिसने पीड़ा दी उसकी पीड़ा की कल्पना कर मन करुणा से द्रवित हो जाना। संत ईसा को जब उनके विरोधियों ने उनके हाथ-पैर तथा शरीर के अन्य अंगों में कांटी ठोंकर क्रास पर लटका दिया तब संत ईसा के मुख से यही निकला—हे प्रभु! इन्हें क्षमा करना। ये नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। विरोधियों के प्रति, कष्ट देने वालों के प्रति रंचमात्र भी द्वेषभाव, अहित कामना नहीं, किन्तु अगाध प्रेम, हित की, कल्याण की ही कामना।

प्रेम में व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं रह जाता और न किसी प्रकार का अहं रह जाता है। प्रेम का दायरा अत्यंत विस्तृत हो जाता है और कोई उससे बाहर नहीं रह जाता। यहां तक पारिवारिक हित को भी गौण कर दिया जाता है और सार्वजनिक हित को वरीयता दी जाती है। यद्यपि पारिवारिक हित को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, क्योंकि जिन लोगों के साथ हम रहते हैं, जिन लोगों के सहयोग से हमें जीवन-निर्वाह में

सुविधा हो रही है, उन लोगों के बारे में सोचना तथा उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखना, हमारा पहला कर्तव्य है। हम पर सबसे पहले उन लोगों का ही अधिकार है। परन्तु यह तो सामान्य स्तर की बात है। ऐसा तो सभी करते हैं, विशेषता तो इसमें है जिसमें पूरे मानव समाज का हित हो ऐसा काम किया जाये। ऐसे काम करने वाले को ही तो महापुरुष कहा जाता है। उनके हृदय का प्रेम इतना विशाल होता है कि वहां अपने और पराये का भेद समाप्त हो जाता है। यहीं पर याद आता है कार्ल मार्क्स के जीवन का यह अद्‌भुत प्रसंग—

कार्ल मार्क्स जब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पूंजी' (CAPITAL) लिख रहे थे तब उनके पास कागज खरीदने के लिए पैसे नहीं रह गये थे। ऐसी स्थिति में उन्हें अपना कोट बेचकर कागज खरीदना पड़ा था। जब वे कोट बेचकर कागज खरीदने जा रहे थे तब उनकी पत्नी जेनी ने कहा कि बच्चा बीमार है उसके लिए दवाई खरीदकर लेते आना। मार्क्स के पास जो पैसे थे वह कागज खरीदने में खर्च हो गये। वे बच्चे के लिए दवा नहीं ला पाये। तब उनकी पत्नी ने कहा कि तुम कैसे निर्दय पिता हो जो अपने बीमार बच्चे के लिए दवा भी नहीं ला सके। पत्नी की बात सुनकर मार्क्स ने कहा— यदि मैं बच्चे के लिए दवा खरीदता तो पुस्तक लिखने के लिए कागज नहीं खरीद पाता। दवा के अभाव में हो सकता है कि हमारा बच्चा न जी पाये, किन्तु जो पुस्तक मैं लिख रहा हूं उसके पूरा हो जाने पर दुनिया के करोड़ों बच्चों को जीवन-दान मिल जायेगा।

इस प्रसंग से यह सहज समझा जा सकता है कि मार्क्स के मन में पूरी मानवता के लिए कैसा अद्‌भुत प्रेम था। वहां तो मानवता के प्रति प्रेम का अपार-अगाध समुद्र हिलोरे ले रहा था। इसी प्रेम के लिए सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

आप इतना नहीं कर सकते, तो अपने आस-पास रहने वालों के साथ तो प्रेम का व्यवहार कर ही सकते हैं। इतना ध्यान रखें कि प्रेम के अभाव में दुनिया का कोई भी ऐश्वर्य आपको सुख नहीं दे सकता। प्रेम तो जीवन की महक है, सुगंध है। सुगंधरहित फूल कैसा भी सुन्दर एवं आकर्षक क्यों न दिखता हो, उसका कोई खास महत्त्व नहीं है जैसे सेमल का फूल। कबीर साहेब ने कहा है—कहा लाल लै कीजिये, बिना बास का फूल। महत्त्व तो उस फूल का है जो दिखने में छोटे भले हों, किन्तु जो सुगंध से भरे हों। इसी प्रकार प्रेमविहीन जीवन सेमल के फूल के समान दिखने भर को है। जहां प्रेम है वहां सुख का खजाना है। थोड़ी जगह में थोड़ी वस्तुओं से निर्वाह करके भी लोग सुख एवं प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकते हैं यदि परस्पर में प्रेम है तो। इस संदर्भ में एक कहानी मननीय है।

दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनकर घर-मालकिन ने दरवाजा खोला तो देखा कि तीन लोग घर के बाहर खड़े हैं। पूछने पर उन्होंने परिचय दिया कि हम तीनों में एक प्रेम है, दूसरा धन और तीसरा यश। हम आपके यहां रहना चाहते हैं किन्तु हम तीनों एक साथ नहीं रह सकते। आप हम तीनों में से किसी एक को ही रख सकती हैं। निर्णय आप पर है कि आप किसे रखना चाहती हैं।

महिला ने पति से पूछा तो पति ने कहा—पूरी दुनिया धन के पीछे ही दौड़ रही है। अतः तुम धन को ही बुला लाओ। धन आ जायेगा तो हम वैभव-आराम, सुख-सुविधा पूर्वक जीवन जी सकेंगे। पुत्र ने कहा— धन तो हमारे पास पहले से ही काम भर का है। और अधिक धन तो चिंता एवं भय का कारण बनेगा। इसलिए धन को न बुलाकर यश को बुला लिया जाये। यश के आ जाने पर सब तरफ हमारा मान-सम्मान होने लगेगा। आखिर लोग मान-सम्मान के लिए ही तो सब कुछ करते हैं। बहू ने कहा—मां! मेरी समझ से तो आप प्रेम को ही बुला लें। क्योंकि प्रेम के आने पर हम खुशहाली और स्वर्ग का जीवन जी सकेंगे। जहां प्रेम है, वहीं स्वर्ग है। प्रेम के अभाव में न धन सुख देगा और न मान-सम्मान।

बहू की बात सुनकर गृहदेवी ने प्रेम को भीतर आने का आमंत्रण दिया। प्रेम के भीतर आने पर उसके पीछे-

पीछे धन और यश भी भीतर आ गये। यह देखकर गृहदेवी ने कहा—तुम तो एक ही को आने को कहते थे लेकिन क्या बात है कि तुम तीनों भीतर आ गये। उसकी बात सुनकर प्रेम ने कहा—देवी! जहां प्रेम होता है वहां धन और यश अपने आप पीछे-पीछे चले आते हैं। तुमने मुझे (प्रेम को) आमंत्रण देकर मानो धन और यश को भी आमंत्रण दे दिया। इसलिए वे भी पीछे-पीछे आ गये।

प्रेम में वह ताकत है कि वह जंगल में भी मंगल कर देता है। आदमी को सबका प्यारा और आंखों का तारा बना देता है। लेकिन प्रेम का अभाव भरे-पूरे मकान को भी श्मशान बना देता है। अपने घर को श्मशान न बनने दें। उसे नंदन-कानन बनायें। इसके लिए आपको करना कुछ नहीं है केवल प्रेम बांटते चलना है। प्रेम टूटे हुए दिलों को जोड़ देता है, दूरियां घटा देता है, मन के जख्म को भर देता है और जीवन को स्वर्गिक आनंद से भर देता है। आप अपने घर में बगिया भले नहीं लगा सकें, क्यारियों में गुलाब के फूल भले न खिला सकें, किन्तु अपने दिल में प्रेम की बगिया अवश्य लगायें, जिससे आपके घर के प्रत्येक सदस्य के जीवन में प्रेम का गुलाब खिल सके और आपके जीवन तथा घर-परिवार का वातावरण प्रेम के सुवास से सुवासित हो सके।

—धर्मेन्द्र दास

मानव तेरी यही कहानी!

लेखिका—साध्वी राजेश्वरी

बच्चा जब मां के गर्भ से बाहर इस दुनिया में आता है, तो रोता है। यदि उस समय शिशु न रोये तो बच्चे को रुलाने का प्रयास किया जाता है। यदि फिर भी न रोये तो समझते हैं कि होने वाले बच्चे में कोई कमी है, वह पूर्णतः स्वस्थ नहीं है।

जैसे-जैसे हमारे शरीर का विकास होता है वैसे-वैसे हमारा रोना और भी बढ़ जाता है। हम जमीन पर अपने बल पर चलने की कोशिश करते हैं, कदाचित गिर जायें तो रोते हैं। फिर स्कूल में पढ़ने जाते हैं, यदि अच्छे अंक प्राप्त न कर सके या फेल हो गये तो रोते हैं। कुछ लोग तो आत्महत्या तक कर लेते हैं। कुछ समय और बीता, सोचा विवाह कर लें फिर सब ठीक हो जायेगा। विवाहोपरान्त भी मन नहीं मिलता है, पति को पत्नी से और पत्नी को पति से प्रतिकूलता मिलती है तो रोते हैं। कुछ समय के बाद बच्चे पैदा हो गये फिर भी रोना बन्द नहीं होता है। पद, प्रतिष्ठा, यश, कीर्ति, जवानी सब आकर चले जाते हैं और बुढ़ापा सामने दस्तक देने लगता है फिर भी रोना कम नहीं होता बल्कि और बढ़ जाता है। मालूम होता है ये आंखें देखने के लिए नहीं बल्कि रोने के लिए ही मिली हैं। पूज्यवर सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी ने कितना हृदयस्पर्शी लिखा है—

इस दुख से भरे जगत में, सुख के सपने हम देखे।
करते प्रवंचना निज से, बीते अनादि के लेखे॥
इस मरुभूमि के जल में, कितनी ही बार नहाये।
कितने भोगों को भोगे, पर अबतक नहीं अघाये॥
ये मोती शबनम के हैं, जीवन वृन्तों पर लटके।
ये छिन्न-भिन्न हो जाते, लगते हल्के से झटके॥

आदमी हर पल सुख की छलांग लगाता है लेकिन एक हलके से झटके में सुख दूर हो जाता है और दुख

हमारी झोली में आ जाता है। हम आये थे शांति की तलाश में, पर हमारा जीवन अशांति से भरा रहता है। जन्म के समय रोना हमारी मजबूरी थी लेकिन जीवन भर रोते रहना जिन्दगी का स्वस्थ समाधान नहीं है। मनुष्य जीवन भर दो और दो पांच पढ़ता रहता है जबकि सच्चाई यह है कि दो और दो चार होता है। यही अविवेक आदमी को रुलाता रहता है। जीवन के कुछ पल हंसने और मुस्कराने के लिए भी होने चाहिए। स्वयं हंसने वाला व्यक्ति ही दूसरों को हंसा सकता है। जो स्वयं ही रो रहा है उसको देखकर भला कोई कैसे हंस सकता है। देखने वाला व्यक्ति भी दुखी हो जायेगा। किसी कवि ने कहा है—

सबको सुख तू बांट निरन्तर, दुनिया के दुख हरना सीख।
अन्यायी से टकरा जाना, दीन-दुखी से डरना सीख॥
ये आंसू अनमोल रतन हैं, पलकों से मत गिरने दे।
हंसते-हंसते सीख ले जीना, हंसते-हंसते मरना सीख॥

संत सम्राट सद्गुरु कबीर ने मानव मन की व्यथा तथा दिल की अन्तर्वेदना को बड़ी गहराई से लिखा है। मानव दुखी क्यों है? दुख का कारण क्या है? और यदि दुख है तो इसका निवारण क्या है?

वस्तुतः मनुष्य की सोच बड़ी निगेटिव हो गयी है, जब तक हमारी सोच उलटी रहेगी, तब तक हम सुखी नहीं हो पायेंगे। जीवन की सच्चाई को समझकर निर्भ्रान्त होकर जीने की कोशिश करनी चाहिए। मनुष्य जितना दूसरों पर शक करेगा, उतनी ही जिन्दगी परेशान करेगी। हमें नहीं मिल रहा है इसलिए हम दुखी नहीं हैं, बल्कि पड़ोसी अच्छा भोजन कर रहा है इसलिए हम दुखी हैं। हम पैदल जाते हैं इस बात का कोई गम नहीं है लेकिन पड़ोसी अच्छी कार में जाता है तो ऐसा लगता है मानो हमारे सीने पर सांप लोट गया हो। हमारे पास छोटा मकान है कोई बात नहीं, परन्तु दूसरों की बड़ी-बड़ी कोठियां देखते ही हमारी सांसें थम जाती हैं। तभी तो किसी ने कहा है—

दिल के फफोले जल उठे, दिल की आग से।
इस घर को आग लग गयी, घर के चिराग से॥

मानव जीवन कीमती ही नहीं बल्कि अनमोल है। लेकिन इसी के साथ-साथ बहुत ही नाजुक है। हमारे पास समय थोड़ा है और बाधायें बहुत हैं। इसलिए हमें समय का बहुत ख्याल रखना चाहिए। जो समय को पहचान लेता है वह चंद समय में ही चांद की ऊंचाई पर पहुंच जाता है। जो नहीं पहचानता वह पश्चाताप करता रहता है। जीवन में कुछ चीजें ऐसी हैं जो एक बार हाथ से निकल जाती हैं तो पुनः लौटकर नहीं आती हैं। हम जहां रह रहे हैं, और जिन लोगों से हमारा सम्बन्ध है, घर, परिवार या संस्था में, कदाचित वहां का अमन-चैन, प्रेम-सौहार्द बिगड़ गया तो लौटकर आना बड़ा कठिन है। हमने जिनसे प्रेम किया है या हम पर जिसने विश्वास किया है उस विश्वास को टूटने नहीं देना चाहिए।

प्रेम की सबसे बड़ी बाधा है शंका। हमने जहां शंका पैदा किया प्रेम वहीं किरकिरा हो जाता है। फिर वही शंका कटुता और नफरत को जन्म देती है। यह नफरत मानव के दिल में या मानव समाज में आती है तो इससे मकान टूटते हैं, परिवार टूटते हैं, सभ्यता और संस्कृति टूटती है। मन्दिर और मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारे टूटते हैं। सब टूटे पर दिल न टूटे।

सब कुछ विध्वंस होने के बाद पुनर्निर्माण हो जाता है लेकिन दिल टूटने के बाद जुड़ना बड़ा कठिन हो जाता है। आदमी के दिल को जख्म देने वाले तो बहुत मिलते हैं, पर मरहम लगाने वाले बिरले होते हैं। प्रेम में दूसरी बाधा स्वार्थपरता है। जहां प्रेम में स्वार्थ पैदा हुआ वहीं प्रेम बालू की दीवार की भांति बिखरने लगता है। स्वार्थी आदमी प्रेम कभी नहीं निभा सकता। यदि उस व्यक्ति का स्वार्थ पूरा न हुआ तो प्रेम तोड़ देगा, और स्वार्थ पूरा हो जाये तो भी प्रेम तोड़ देगा। सेंट की शीशी खोल कर रखें जान भी नहीं पायेंगे और सेंट शीशी से गायब हो जायेगा। तभी तो कहा है—

तुच्छ स्वार्थ में इन लोगों ने, मानवता का खून किया।
अपने-अपने सुख के कारण, चैन जमीं का छीन लिया॥
निजी स्वार्थ में पड़कर के, काला इतिहास बना डाला।
तुमने कबीर के घर में क्यों, नफरत का पेड़ लगा डाला॥

जीवन में प्रेम का बड़ा ऊंचा स्थान है। समझदार व्यक्ति राग-द्वेष, ईर्ष्या, नफरत नहीं करता, वह तो प्रेम करता है। प्रेम में ही त्याग हुआ करता है। आप जिससे प्रेम करते हैं उसे आप प्यारी से प्यारी, कीमती से कीमती वस्तु सहर्ष समर्पित कर देते हैं। इतना ही नहीं दुनिया की बड़ी से बड़ी दौलत देने को भी आप तैयार रहते हैं। और तो और यहां तो प्रेम की पाती लाने वाले कौए की चोंच भी सोने से मंढ़वा दी जाती है। प्रेम का इतना ऊंचा स्थान है।

दूसरी तरफ जो व्यक्ति ईर्ष्या, नफरत करता है, वह अपनी शक्ति का ह्रास करता है। उसका आत्म बल, बौद्धिक बल और चारित्रिक बल धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। वह खुद भी जलता है और दूसरों को भी जलाता है। माचिस की तीली दूसरी चीजों को जलाने से पहले खुद ही जलती है। ऐसा भी होता है कि दूसरी चीजें न भी जल पायें परन्तु स्वयं तो जलती ही जलती है। हमें ईर्ष्या-क्रोध की जगह पर प्रेम-सहिष्णुता की धारा प्रवाहित करनी चाहिए। सद्गुरु कबीर कहते हैं "प्रेम पाट का चोलना, पहिर कबीरू नाच।" हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रेममय हो जाये। जीवन की धारा प्रेम से आप्लावित हो जाये। कहीं-कहीं हम भूल कर जाते हैं और मोह को ही प्रेम समझ बैठते हैं। जबकि मोह सदैव दुखदायी, पीड़ादायी हुआ करता है। और प्रेम में त्याग सन्निहित हुआ करता है।

भक्त या जिज्ञासु का अपने आराध्य सद्गुरु या संतों के प्रति अनन्य प्रेम हो जाता है तो वह कुछ का कुछ हो जाता है। ऐसा जिज्ञासु ही संतत्व को प्राप्त होता है। हम जिससे निश्छल और निस्स्वार्थ प्रेम करते हैं उसके साथ नंगे पैर पैदल चलना भी अच्छा लगता है और जिससे प्रेम नहीं करते हैं उसके साथ हवाई जहाज में भी जाना अच्छा नहीं लगता है। रामायण संदेश देती है वनवास तो सिर्फ राम का हुआ था, लेकिन सीता जी अपने पति श्री राम से बेहद प्रेम करती थीं, फलतः राजसी वस्त्रों का परित्याग करके श्री राम के साथ जंगलों में चल देती हैं। भ्राता लक्ष्मण भी श्री राम से अनन्य प्रेम करते थे और वे भी वल्कल वस्त्र धारण करके अपनी जवानी अवस्था में वन को चले जाते हैं। श्रेष्ठ बनने के लिए लघु बनना पड़ता है। लघुता, नम्रता जीवन के आभूषण हैं। इन सद्गुणों से जीवन में शांति रहती है। शांति जीवन का धन है। कटुता से हटकर समता के पथ में आयें। समता में रहना साधना की ऊंचाई है। समता की सीढ़ियों पर चढ़कर ही शांति की मंजिल को प्राप्त किया जा सकता है। कितना सुन्दर कहा है—

सदा शांति रहती है समता के पीछे,
समता न आती विषमता के पीछे।
विषमता रहा करती ममता के पीछे,
ममता बढ़ाना महा मूढ़ता है।

(पथिक जी महाराज)

हमें निर्मान, निर्मोह तथा निर्लोभ रहकर जीवन को गढ़ना है। लोभ आदमी को अंधा बना देता है। लोभ सबसे बड़ा पाप है। हमारे अन्दर जो भी दोष-दुर्गुण हैं उन्हें हम दूर करते चलें। हां, श्रेष्ठता और उज्ज्वलता प्राप्त करने के लिए कुछ कष्ट तो सहना ही पड़ेगा। पुष्पहार बनने के लिए फूल को सुई चुभने का दर्द सहना पड़ता है। अपने जीवन को सुरीला बनाने के लिए बांस को कितना बलिदान करना पड़ता है, कितनी तपस्या करनी पड़ती है। पहले कारीगर बांस को काटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करता है। फिर अन्दर से पोला करके बांस में गर्म-गर्म सलाखों से कई जगह छेद करना पड़ता है। इतना सब सहने के बाद ही वह मुरली का रूप ले पाता है। हमें भी श्रेष्ठ बनने के लिए कष्टों को सहना होगा, तभी हम अपने को परिष्कृत कर पायेंगे।

हम सदैव अपने दुर्गुण और दूसरों में सद्गुण देखें। संसार में बुरे से बुरे व्यक्ति के अन्दर भी कुछ न कुछ सद्गुण अवश्य होंगे। जब हम दूसरों के गुण देखते हैं तो हमारा हृदय श्रद्धा और प्रेम से अभिभूत हो जाता है, और दुर्गुण देखते हैं तो हृदय में अश्रद्धा उभर आती है। किसी ने कहा है—

सबके गुण अपनी हमेशा गलतियां देखा करो।
जिंदगी की हूबहू कुछ झलकियां देखा करो॥

अपने को देखने से जीवन सुनियोजित ढंग से जिया जा सकता है। सुनियोजित ढंग से जीने वाले का सब कुछ मंगलमय हो जाता है। कितने महापुरुष अल्पायु में ही बड़े-बड़े काम कर गये। हम अपने कर्तव्य को न समझ पाये और चूक गये तो बाद में पश्चाताप ही हाथ लगेगा। हमारा कर्तव्य क्या है? हमें मानव जीवन क्यों मिला है, हमारा उद्देश्य क्या है? आदमी इन सब चीजों को छोड़कर जीवन भर रोटी, कपड़ा और मकान में उलझा रहता है। हमारा कर्तव्य है अपने को जान लेना, अपने आत्म अस्तित्व को समझकर ठहर जाना। शरीर नश्वर है। इसके लिए चिन्ता नहीं करनी है, कर्तव्य करना है। आत्मा अखण्ड अविनाशी है। शरीर का जन्म बार-बार होता है। यह जीव शरीर के सम्बन्ध में रहने से ही सुख-दुख भोगता है। शरीर परिवर्तनशील है लेकिन आत्मा अपरिवर्तनीय है। शरीर का जन्म, बचपन, जवानी, बुढ़ापा और मृत्यु होती है लेकिन आत्मा का कुछ नहीं। मनुष्य के मन की आशा-तृष्णा-वासना नहीं मरती है केवल शरीर मरता है। मृत्योपरान्त कर्म संस्कार लेकर जीव प्रस्थान करता है और अगले शरीर की रचना होती है।

कर्म फल अदृश्य रूप से हमारे साथ चलते हैं। पाप कर्म को आप भले ही भूल जायें कि मैंने कब किया है, परन्तु पाप कभी नहीं भूलता, और वह पीछे-पीछे उसी प्रकार आ जाता है जिस प्रकार हजारों गायों के बीच बछड़ा अपनी मां के पास आ जाता है। हमारे घर-परिवार में हमारे ही भाई-बहन कितने प्रतिकूल और विरोधी हो जाते हैं। और वे जब तक जीते हैं तब तक दुख देते रहते हैं। मनुष्य जितना परिवार से दुख पाता है उतना पूरे संसार से नहीं पाता है।

व्यक्ति जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा फल भोगना ही पड़ेगा। इसलिए हमें हर समय अच्छे कर्म करना चाहिए। अच्छे कर्म का फल अच्छा और गलत कर्म का फल गलत होता है, यह अकाट्य है। राग, द्वेष, ईर्ष्या, छल-कपट, दुर्व्यसन आदि से अन्तःकरण गंदा करके बदबू नहीं फैलानी चाहिए। जब आदमी चोरी करने लगता है तो झूठ, हिंसा सब करने लगता है। इसलिए दया, क्षमा, शील, सत्य, सहिष्णुता, विवेक, विचार आदि से अपने जीवन को सुशोभित करना चाहिए। अच्छे कर्मों की सुगंधि सर्वत्र फैल जाती है। किसी ने कहा है—

जहां कहीं भी दीपशिखा मुस्काती है,
परवानों की भीड़ मचलती चली आती है।
फूल कहीं निर्जन में चाहे खिल जाये,
भंवरों को चुपचाप खबर मिल जाती है।

सारतः हम नैतिकता-सदाचार पूर्ण निश्चिंत जीवन जीकर भक्तिपरायण और उदार बनें। उदारता जीवन को आदर्शमय बनाने के लिए अति आवश्यक है। हमारे पास अपने और दूसरों के विकास के लिए तन, मन और धन की शक्तियां हैं परन्तु हम इनका सदुपयोग नहीं कर पाते। हमारे पास सब कुछ होते हुए भी चेहरे पर मुस्कान नहीं, बल्कि चिंता की रेखाएं हैं। पूरा जीवन चिंताओं से घिरा रहता है। तभी तो किसी ने कहा है—

चिंता से सुधि-बुधि हरत, घटत रूप गुण ज्ञान।
लाज काज विद्या घटत, चिंता चिता समान॥
चिंता है बड़ी चिता से भी, नर को निर्जीव बनाती है।
मुर्दे को चिता जलाती है, चिंता जीते जी खाती है॥

हमारे पास अथाह पैसा है फिर भी हम परमार्थ, दीन-दुखी की सहायता और संत-सेवा से बहुत दूर बने रहते हैं। इतना ही नहीं, हम स्वयं तो शुभकार्य करते ही नहीं किन्तु दूसरे लोग परमार्थ करते हैं, उन्हें देख भी नहीं सकते हैं।

काश! हमारे जीवन जीने का नजरिया बदल जाये तो जीवन में सुख-शांति आ जाये। और इन आंखों से आंसू बहना बंद हो जाये। हम जो भी देखें, जब भी देखें बस अपने आराध्य की पावन तस्वीर दिखाई दे तभी हम स्वर्गिक जीवन जी सकते हैं जो जीवन की सार्थकता है। तभी तो किसी ने कहा है—

हर जगह पर तेरी हस्ती है, हर जगह पर तेरी बस्ती है।
कुछ मैं उठूं कुछ तू झुक जा, तभी जीवन की मस्ती है।

लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

12. विलास नहीं, सादा जीवन सुखप्रद है

1. *The five colours blind men's eyes.*
   The five tones deafen men's ears.
   The five flavours spoil men's palates.
   Running and chasing make men's hearts mad.
   Rare goods confuse men's ways.

2. *Therefore the Man of Calling*
   works for the body's needs, not for the eye's.
   He removes the other and takes this.

अनुवाद

1. *पांच रंग मनुष्य की आंखों को अंधा कर देते हैं।*
   पंच स्वर मनुष्य के कानों को बहरा कर देते हैं।
   पंच स्वाद मनुष्य की जिभ्या को बिगाड़ देते हैं।
   चीजों के लिए भाग-दौड़ मनुष्य को पागल बना देती है।
   बहुमूल्य वस्तुएं मनुष्य को आचरणभ्रष्ट करती हैं।

2. *अतएव,*
   संत शरीर की आवश्यकता के लिए काम करते हैं,
   आंखों के लिए नहीं।
   वे दूसरे को छोड़कर, इसको ग्रहण करते हैं।

भावार्थ—1. मनुष्य को पांच रंग अंधा बनाते हैं, पांच शब्द बहरा बनाते हैं, पांच स्वाद उसकी जीभ को बिगाड़ते हैं, वस्तुओं के लिए भागादौड़ी उसे पागल बनाती है और बहुमूल्य वस्तुएं उसे आचरणभ्रष्ट करती हैं।

2. इसलिए संत शरीर-निर्वाह मात्र के लिए काम करते हैं, इंद्रियों के भोग-विलास के लिए नहीं। वे बाहरी भागदौड़ छोड़कर संतोष ग्रहण करते हैं।

भाष्य—पांच रंग हैं—नीला, लाल, पीला, उजला तथा काला। पांच स्वर हैं—(चीनियों के अनुसार) G, A, B, D, E, तथा (इंगलिश के अनुसार) C, D, E, G, A, और भारतीय ढंग से कहें तो सात स्वर हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नी। पांच स्वाद हैं—तीखा, नमकीन, मीठा, खट्टा तथा चर्फरा। भारतीय ढंग से कहें तो षटरस—मीठा, नमकीन, कड़वा, तीता, कसैला और खट्टा।

कुल मिलाकर ग्रंथकार का कहना है कि इंद्रियों के विषयों में लगने पर मनुष्य विवेकहीन होकर भटकता है। जब हम किसी स्त्री, पुरुष, मकान, गाड़ी या किसी दृश्य में मोह एवं लोभ करते हैं, तब हमारा मन चंचल हो जाता है, हम अपनी शांति खो देते हैं। ऐसी स्थिति में हम महत्त्वहीन होकर पतित हो जाते हैं। यह आंतरिक पतन है। सुंदर दिखने वाले नर-नारी या पदार्थ न सदैव सुंदर रहते हैं, न हमारे निकट रह सकते हैं और यदि कुछ समय के लिए निकट भी रहें, तो उनसे हमें शांति नहीं मिल सकती। अतएव रंग-रूप में मोहकर अपनी आंखों को अंधा करना है। बाहरी अनात्म, विकारी, क्षणभंगुर रूपों-रंगों में मोहित होने वाला अपने आंतरिक स्वरूप को नहीं देख सकता।

बाहरी स्वर के मोह में फंसा व्यक्ति अपने आंतरिक स्वर को, अंतरात्मा के स्वर को नहीं सुन सकता। बाहरी स्वर-संगीत में मोहित व्यक्ति भीतर का स्वर-रहित स्वर—आत्मानुभव की स्थिति में नहीं पहुंच सकता। भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य प्रेरक गीत से लाभ उठाना हितकर है, परंतु संगीत-स्वर में डूबना साधना-विरोधी है।

पंच स्वाद मनुष्य की जीभ को बिगाड़ देते हैं। हर खाद्य तथा पेय वस्तु में स्वाद होता है। लेकिन उन्हें अधिक स्वादीला बनाकर बिगाड़ा जाता है जो पेट और मन दोनों के लिए अहितकर होते हैं। केवल जठर-

ज्वाला को शांत करने के लिए भोजन औषध रूप में ही लेना चाहिए। जीभ-स्वाद का लंपट मनुष्य शुद्ध ब्रह्मचर्य का न पालन कर सकता है और न आध्यात्मिक साधना में आगे बढ़ सकता है। भोजन सदैव सात्विक, शुद्ध, सुपाच्य तथा संतुलित लेना चाहिए।

चीजों के लिए भाग-दौड़ मनुष्य को पागल बना देती है। जीवन-निर्वाह की चीजों की आवश्यकता सबको है, किंतु रजोगुणी मन वस्तुओं का ढेर लगाकर उससे सुख पाने की दुराशा करता है। फल यह होता है कि आत्म-कल्याण के लिए साधना करने का समय और बल दुनिया के कबाड़ बटोरने में लगा देता है। लौकिक वस्तुओं को बेतहाशा बटोरने की तृष्णा में मनुष्य रात-दिन उन्हीं का चिंतन करता है और उनके लिए नीति-अनीति, राग-द्वेष करता है, अतएव उसका मन विक्षिप्त होकर उसी के पीछे लगा रहता है। उसे संत संगत, स्वाध्याय, आत्मचिंतन, ध्यान, मन को खाली कर शांति में रहने का अवसर कहां!

बहुमूल्य वस्तुएं मनुष्य को आचरणभ्रष्ट करती हैं। चांदी, सोना, हीरे, मोती, रत्न तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को पाने के लिए और उनके संग्रह के लिए मनुष्य अनेक प्रकार से दूसरे के अधिकार को छीनता है। यहां तक कि अपने माता, पिता, भाई, पुत्र, पति, पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करता है। मन और आचरण को भ्रष्ट करना अपना नरक है, फिर ये कंकर-पत्थर उसको क्या सुख दे सकते हैं!

ग्रंथकार कहते हैं, **इसलिए संत शरीर की आवश्यकता के लिए काम करते हैं, आंखों के लिए नहीं। वे दूसरे को छोड़कर इसको ग्रहण करते हैं।** संत वही है जो अपनी श्रेणी और परिस्थिति के अनुसार काम करे और बदले में केवल शरीर-निर्वाह के लिए सादा भोजन-वस्त्र आदि ले। इसके अतिरिक्त कुछ न चाहे। ग्रंथकार कहते हैं कि संत आंखों के लिए काम नहीं करते। यहां आंख का अर्थ लाक्षणिक है। इसका अभिप्राय है कि वे मन-इंद्रियों के भोग-विलास के लिए प्रयत्न नहीं करते। **संत दूसरे को छोड़कर इसको ग्रहण करते हैं।** अर्थात विलासी वस्तु एवं व्यवहार छोड़कर सादा जीवन और संतोष का रास्ता पकड़ते हैं।

लूट

रचयिता—देवेन्द्र कुमार मिश्रा

मुँह में दाँत नहीं
पेट में आंत नहीं
शरीर में झुर्रियाँ
सारे शरीर के बाल
सफेद
और मन साला
फिर भी काला का काला।
नारी देख लार टपकाये
स्वर्ण देख लोभ भर जाये
जीर्ण-शीर्ण होती देह
पाचन तंत्र न अन्न पचा पाये
सौ रोगों से शरीर सताये
फिर भी देखो कुत्ती जीभ
छप्पन व्यञ्जन की
आस लगाये।
मृत्यु खड़ी द्वार पर
हिसाब-किताब जारी है
क्या-क्या करना है वसूल
क्या-क्या चुकाने से है बचना
कैसे अपना बचा दूसरा
का हड़पा जाये
देखो दिमाग की नालायकी
अब भी क्या-क्या लूट मचाये।

ऐश्वर्य की कामना रखनेवाला अंतर्मुख नहीं हो सकता। जो ऐश्वर्य की कामना रखता है वह दोनों तरफ से जाता है। ऐश्वर्य अंततः छूट ही जाना है और उसने ऐश्वर्य के लोभ में स्थिर स्वरूपस्थिति स्वयं छोड़ दी। कौन विवेकवान छूटनेवाली झूठी वस्तुओं का लालच करके अपने अविचल आत्म-शांति धाम को छोड़ देगा!

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

शरीर में रहते-रहते मोक्ष का महा आनंद तब मिलता है जब हृदय से तीव्रतापूर्वक लगता है कि मेरा इस संसार में कहीं कुछ नहीं है और अपना माना हुआ शरीर कूड़ा-कचड़ा लगता है। वस्तुतः यही तथ्य है, किन्तु इस तथ्य का तीव्रतापूर्वक अनुभव हुए बिना निर्विकल्प समाधि अथवा मुक्ति का अपरोक्ष अनुभव नहीं होता। अपने नाम-रूप का अपमान और तिरस्कार पाने पर जो अपने विरोधियों के प्रति प्रतिक्रिया होती है और मन में बारंबार उनके प्रति उद्वेग उठता है, वह केवल अपनी दिव्य आत्मस्थिति के अभाव के कारण है। जब अपना मन पूर्ण रूप से उत्कट वैराग्य और स्वरूपबोध में लीन रहता है, तब कुछ समस्या, प्रतिक्रिया, उद्वेग आदि नहीं रहता। अपने मन की अहंता-ममता को छोड़कर समस्या कहीं है ही नहीं। इस छूटने वाले कूड़ेदान शरीर-संसार का मोह छूट जाने पर निरंतर परमानंद एवं मोक्ष है।

* * *

आज से सत्तर वर्ष पूर्व जो लोग हमारे साथ थे, उनमें से कोई इस दुनिया में नहीं रहा। साठ वर्ष के पूर्व के साथी भी नहीं रहे। पचास वर्ष पूर्व के भी साथी नहीं के समान हैं। एक वर्ष पूर्व के साथियों में कई साथ में नहीं हैं। नित्य-नित्य जो मिलते हैं, वे खो जाते हैं। बिजली की चमक की तरह सारा दृश्य सामने होकर ओझल हो जाता है। आज का दृश्य भी मेरे साथ नहीं रहेगा। देश, काल और परिस्थिति मेरे साथ नहीं रहते। निर्विकल्प समाधि में देश, काल और परिस्थिति शून्य हो जाते हैं। अहो, आज से सौ वर्ष बाद मेरा इस संसार में क्या रहेगा? आज ही मेरा मेरे अलावा क्या है? मन, बुद्धि, इंद्रिय, शरीर आज-कल में खो जायेंगे और सारा जड़-दृश्य ओझल हो जायेगा। अतएव स्वतः स्वरूप में दृढ़ स्थित रहो।

* * *

जीवन-यात्रा में मिलने वाले प्रेमी एक-एक कर ओझल एवं स्वप्न होते जा रहे हैं। इसी प्रकार यह शरीर आज-कल में खो जायेगा। बिछुड़े प्रेमी तो देह होने से याद भी होते हैं, देह छूट जाने पर देह की कभी याद भी नहीं होगी। कारण यह है कि मेरा अस्तित्व निराला है, अकेला है, केवल है। उसमें विजाति वस्तु है ही नहीं। दुख क्यों! जब कुछ अपना है ही नहीं तब दुख किस बात का? अतएव हे मन! सब समय जागरूक रहो। कहीं और कभी मोह की नींद न लो। आत्मजागृति जीवन्मुक्ति है।

* * *

ध्यान दो, दिन में कितनी बार अपना मन धोखा देता है और गलत बात की याद कराता है। यदि कोई आदमी तुम्हें गलत कह दे तो तुम दुखी हो जाते हो, और तुम्हारा मन क्षण-क्षण धोखा देता है, उससे दुखी नहीं होते हो। याद रखो, दूसरे के गलत कहने से तुम्हारी हानि नहीं होगी, यदि तुम ठीक हो; परन्तु तुम्हारा मन गलत रहने से तुम्हारी हानि होगी। इसलिए किसी के भला-बुरा कहने से उसके प्रति वैर की गांठ मत बांधो, अपितु अपने मन की बुराइयों को मिटाओ। अपने मन को हरक्षण शुद्ध रखने वाले की संसार में किसी की शक्ति नहीं है कि हानि कर सके। अतएव तुम्हारे लिए कोई दूसरा व्यक्ति समस्या नहीं बना सकता। तुम्हारे लिए समस्या बनाने वाला तुम्हारा गंदा मन है। अतः उसे शुद्ध रखो।

* * *

संसारी व्यक्ति तो ऐश्वर्य-प्रदर्शन में लगे हुए हैं ही, कितने धर्माचार्य भी भयंकर प्रदर्शन में पड़े हैं। धर्माधिकारियों का ऐश्वर्य-प्रदर्शन धर्म तथा अध्यात्म के बिलकुल विरुद्ध है। सारा ऐश्वर्य तो माटी है। व्यवहार-बरताव निर्वाह तथा कार्य-संपादन के लिए होने चाहिए, दिखावा के लिए नहीं। समाधि महा सुख है जिसमें मानसिक जलन का अंत है। यह शरीर तो कूड़ा-कचड़ा है। मल-मांस का पिंड, हड्डियों का कंकाल, दुर्गंधयुत और नश्वर है। इसका मोह छोड़कर स्वस्वरूप में विश्राम मोक्ष है और विदेह-मोक्ष का कारण है। जो साधक हर क्षण प्रपंच-शून्यता को देखता

है, वह दुखी नहीं होता। एक दिन यह मल की टोकरी देह शून्य हो जायेगी। मैं द्रष्टा शुद्ध चेतन नित्य, निर्मल, परम शांत स्वरूप हूं।

* * *

ब्रह्मप्राप्ति, रामप्राप्ति, परमात्मप्राप्ति, मोक्षप्राप्ति, निर्वाणप्राप्ति का अर्थ एक ही है अपने आप में पूर्ण संतुष्ट हो जाना। इस छूटने वाले संसार की किसी वस्तु की इच्छा करना अज्ञान है। इच्छारहित होकर जीना मोक्ष है। स्वरूपलीनता ही ब्रह्मलीनता है; क्योंकि जीव ही ब्रह्म है। स्वामी शंकराचार्य भी (वि. चू. 395 में) कहते हैं "वक्तव्यं किमु विधतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयम्। इस विषय में विशेष क्या कहना, जीव स्वयं ब्रह्म ही है।" संसार की इच्छा त्यागकर निरंतर आत्मचिंतन तथा आत्मलीनता में रहना असली भजन है। अब इस नंगी दुनिया, छूटने वाले संसार से क्या चाहना! आनंद का सरोवर भीतर भरा है, फिर बाहर की वस्तु में क्या मोह, जो क्षण-क्षण गल रही है। जो बन सके दूसरे की सेवा करना और हरक्षण अपने आप में पूर्ण संतुष्ट रहना, यही जीवन की परम सफलता है।

* * *

किसी गुरु ने, किसी संत एवं भक्त ने मुझे सन्मार्ग की तरफ प्रेरित किया है, तब मुझे अपने स्वरूप का बोध हुआ है तथा विषय-विष की भयंकरता का ज्ञान हुआ है और संत-गुरु के सहारे, आश्रय में रहकर मेरा कल्याण हुआ और हो रहा है। अतएव मेरा भी कर्तव्य है कि दूसरे जिज्ञासुओं तथा मुमुक्षुओं की सेवा करूं। पंरतु सावधानी यह चाहिए कि मेरे ऊपर दूसरों के उद्धार करने की तृष्णा तथा पागलपन न सवार हो। सहज मिले हुए सत्पात्रों को निर्देश कर देना उचित है। वैसे हम सिर पटक कर भी संसार का उद्धार नहीं कर सकते। संसार अपनी गति में चलेगा। इसमें बिरला-बिरला समझेगा। अपना पूर्ण उद्धार कर लेना मानो जगत का उद्धार करना है।

* * *

ऐसे धार्मिक होते हैं जो दूसरे संप्रदाय के मनुष्यों को अच्छा नहीं मानते हैं। उन्हें उनके उस्तादों ने ऐसी घुट्टी पिलायी है कि वे अमुक वर्ग से घृणा करें और घृणा फैलायें। ऐसे लोगों की धारणा उनके लिए, समाज के लिए तथा देश के लिए अमंगलकर है। सभी संप्रदायों तथा मजहबों में अच्छे लोग विद्यमान हैं। समता, शील और सहन का आचरण किये बिना न आत्मकल्याण है और न समाज कल्याण है। अपना मन तो यही रखना चाहिए कि सभी वर्ग में अच्छे लोग हैं। हम स्वयं अच्छे रहें और दूसरों की हितकामना करें, यही सुख-शांति का सच्चा रास्ता है। मौलिक एकता पर ध्यान होना चाहिए।

* * *

मिलने वाले मनुष्य सब अपने-अपने ढंग के होते हैं। जिसके मन में जैसी धारणा तथा कर्मों के संस्कार हैं, उसी ढंग से वे बात करते हैं। उनमें न उलझना विचारवान की समझदारी है। सबकी बात सुनना और सबसे सार ले लेना तथा किसी से विवाद न करना, यह पवित्र समझ और रहनी का लक्षण है। मुझे तो विविध प्रकार के लोग मिलते हैं, क्योंकि मैं विचरणशील हूं। उनकी बातें सुनता हूं। अधिक सुनता ही हूं। अवसर पर थोड़ा स्वयं भी बोलता हूं। जब मेरा शरीर छूट जायेगा तब यह सब कुछ नहीं रह जायेगा। विवेक से समझता हूं कि शरीर रहते हुए भी मानो यह सारा संबंध नहीं है। अतएव संबंध में भी मन में कोई द्वंद्व नहीं है। देह रहते हुए देहातीत दशा में जीना शाश्वत शांति का पथ है।

* * *

सद्गुरु कबीर कहते हैं—"बाजन दे बाजंतरी, तू कल कुकुही मति छेर। तुझे बिरानी क्या परी, तू अपनी आप निबेर॥" दूसरे लोग क्या करते हैं और तुम्हारे लिए क्या धारणा रखते तथा क्या कहते हैं, इसका महत्त्व नहीं है, महत्त्व है कि तुम्हारा मन कैसा रहता है। 'तू अपनी आप निबेर' तुम अपने को जड़-दृश्यों से निरंतर छुड़ाये रखने का प्रयत्न करते रहो। अपना समय अनुकूल और प्रतिकूल मनुष्यों के गुण-दोषों के विचार तथा चर्चा में मत बरबाद करो, अपितु अपने मन को निरंतर शुद्ध तथा अंतर्मुख रखने के प्रयत्न में रहो।

हिन्दू कहौं तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिं

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

ईश्वरवादी धर्मदर्शन के अनुसार सर्वव्यापी, सर्व-शक्तिमान तथा सर्वज्ञ ईश्वर अलौकिक शक्ति सम्पन्न है और उसी ईश्वरीय कल्पना को संत कबीर नकारते हैं। दूसरा दर्शन है अवतारवाद का। मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस अवतार की कल्पना है। इनमें राम, कृष्ण तथा बुद्ध ऐतिहासिक पुरुष प्रतीत होते हैं जिन्हें नर रूप में नारायण कहते हैं। कबीर कहते हैं—"मरि मरि गये दशों अवतारा।"

कबीर मतानुसार ये अवतारी पुरुष भी मरणधर्मा हैं। जो खुद मर गये वे किसी को उत्पन्न करने, पालने तथा संहार करने के लिए सक्षम नहीं। जो जन्म लेता है वह मर जाता है। यह असंभव प्रतीत होता है कि संसार जो अबाध रूप से बसा-बसाया है उसका सिरजनहार कोई अल्प आयु का प्राणी हो। एक अन्य पद में कबीर कहते हैं—

नौ हूं मरिहैं दशहूं मरिहैं, मरिहैं सहस अठासी।
तैंतीस कोटि देवता मरिहैं, पड़ी काल की फांसी॥

(कहत कबीर, भजन 235)

नौ नाथ, दस अवतार, अट्ठासी हजार ऋषि एवं तैंतीस करोड़ देवता भी मृत्यु के अधीन हैं, उन सब के गले में काल की फांसी लगी है। कबीर के मतानुसार अवतारवाद एक मिथक मात्र है।

एक बड़ा सैद्धान्तिक कारण भी है जिसकी वजह से कबीर मर्मज्ञ अवतारों से संत कबीर की तुलना करना अच्छा नहीं समझेगा। अवतारों में श्रीकृष्ण और श्रीराम भारतीय समाज में श्रद्धेय हैं। लेकिन इन दोनों के बारे में जो कुछ लिखा गया है उन सबसे कबीर के सिद्धान्तों का उल्लंघन होता है। जैसे गीता में श्रीकृष्ण द्वारा कहलाया गया कि स्त्री, वैश्य तथा शूद्र—पाप योनि भी मेरी शरण में आकर परमगति को प्राप्त करते हैं।[1] वहीं कबीर हाड़, त्वचा, मांस, मल-मूत्र, रुधिर एवं गुदा से निर्मित मनुष्यों में भेद नहीं करते। सभी मनुष्यों का निर्माण, जैविक रूप (Biologicaly) से एक-सा है—

एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा॥

(बी. श. 75/5-6)

संत कबीर और श्रीकृष्ण के सिद्धान्तों में यही भेद है। (बी. श. 100/4) कहता है—'कहहिं कबीर ये हरि के बूता, राम रमेते कुकुरि के पूता'—यह जीव स्वयं परमात्मा है और वह राम पिल्ला में भी रम रहा है।

वाल्मीकीय रामायण में कबन्ध नामक एक भयानक राक्षस राम और लक्ष्मण को अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओं में जकड़कर खाने का प्रयास करता है। दोनों भाइयों ने उसकी भुजाओं को काट डाला जिससे वह शापमुक्त हो गया। उसने राम को बताया कि उसने एक बार स्थूलशिरा[2] नामक महर्षि को कुपित कर दिया था जिन्होंने भयानक राक्षस होने का शाप दे दिया था। रामायण की कथानक पर आधारित रामचरितमानस की रचना सत्तरहवीं सदी में हुई। वहां भी राम ने कबंध को मार डाला। कबन्ध ने बतलाया कि दुर्वासा जी ने मुझे शाप दिया था। इतना सुनते ही राम का सुर बदल गया और बोले—"मोहि न सोहाइ ब्रह्म कुल द्रोही" ब्राह्मण कुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता।

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत विरंचि सिव बस ताकै सब देव॥

मन, कर्म और वचन से कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं। वहीं मानसकार राम से कहलाते हैं—

---

1. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम्॥ 9/3 ॥

2. ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया।
(अरण्यकाण्ड, सर्ग 71/3)

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥[1]
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥

श्री राम कहते हैं—'संत लोग ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण शाप दे, मारे और गाली दे फिर भी पूजनीय है। ब्राह्मण चरित्रहीन हो तो भी पूजो। गुणों से सम्पन्न और ज्ञान में निपुण शूद्र हो तब भी मत पूजो।' देवकीनंदन हों या दशरथ-सुत ब्राह्मणों के लिए पुनरावर्तक (Repeater) हर हाल में होंगे। इसीलिए कबीर विचारधारा में अवतार अमान्य है। हालांकि कुछ ऐसे भी हैं जो स्वयं को कबीर का उत्तराधिकारी बतलाते हैं, अपनी पोथियों में लिखते हैं कि "कबीर साहेब परमात्मा हैं। वे युग-युग में अवतार लेते हैं; आदि-आदि।" इन्हीं लोगों ने कहा कि कबीर विधवा ब्राह्मणी के पुत्र हैं। इस पर और मुल्लमा चढ़ाकर लिख डाले कि नीरू और नीमा जिन्होंने कबीर को पुत्र बनाकर पालन-पोषण किया—वस्तुतः द्विजश्रेष्ठ गौरीशंकर और सरस्वती देवी थे जिन्हें मुसलमानों ने अपवित्र कर दिया था। खैर, मूल विषय है अवतारवादी विचारधारा के केन्द्र में ब्राह्मण है जिसकी मर्यादा की स्थापना के लिए 'सापत ताड़त....ग्यान प्रबीना' का उपदेश श्री राम करते हैं। यह भी भूल जाते हैं कि उनके वाक्यों से गुण और ज्ञान की प्रतिष्ठा गिर जाती है।

अवतारों के बारे में कबीर ने लिखा—

दश अवतार ईश्वरी माया, कर्ता कै जिन पूजा।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, उपजै खपै सो दूजा॥

(बी. श. 8/21-22)

ब्राह्मण के खातिर तपस्या में लीन शूद्र-शम्बूक की हत्या भगवान कर सकते हैं, करें, किन्तु हिंसायुक्त कर्मकांड कराने वाले ब्राह्मण कबीर के शब्द-बाण से नहीं बच पाये—

संतो पांड़े निपुण कसाई।
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई।
करि स्नान तिलक दै बैठे, विधि सों देवि पुजाई॥

(बी. श. 11/1-3)

ऊंच-नीच का भेद और हिंसायुक्त कर्मकांड यदि हिन्दू धर्म-आस्था का अंग है जिसे तिलक छाप ब्राह्मण सम्पन्न करता है तो कबीर-अनुयायी न तो उस धर्म आस्था को स्वीकार करता है और न उस पुरोहित को पूजनीय समझता है। कबीर की सोच में पण्डा-पुरोहित का स्थान नहीं है। उनके लिए मुसलमान भी उसी श्रेणी में हैं क्योंकि *'ई हलाल वै झटका मारें, आग दुनों घर लागी'*। (बी. श. 10/8)।

कबीर वाणी में जगह-जगह 'राम जपो' का संकेत है। संभव है कुछ भक्त इसीलिए दशरथ-सुत राम से कबीर के राम को जोड़ लेते हैं। लेकिन विवेकी एवं विचारवान लोगों से कबीर का आग्रह है—'राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो'—राम का गुण न्यारा है, न्यारा है, न्यारा है। एक के स्थान पर तीन बार 'न्यारा' शब्द दर्शाता है कि दशरथ-सुत राम से 'कबीर के राम' का गुण अत्यंत ही न्यारा (Seperate, distinct, different) है। सब समझ नहीं सकते। इसलिए कबीर कहते हैं—'अबुझा लोग कहाँ लों बूझै, बूझनहार विचारो।' (बी. श. 18/1-2)। दूसरे पद में इसी धारा को आगे बढ़ाते हैं—'ये ततु राम जपो हो प्राणी, तुम बूझहु अकथ कहानी' (बी. श. 19/1)—अर्थात दशरथ सुत राम (सीता राम, सीता राम) नहीं रामतत्त्व का जाप करो। कबीर ने अपने राम की व्याख्या अनेक स्थानों पर किया है जिन्हें बुझनहार लोगों को बूझना अनिवार्य है। संत कबीर कहते हैं 'हृदया बसे तेहि राम न जाना' (र. 41); 'दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा' (श. 97); 'सोई नूर दिल पाक है, सोई नूर पहिचान' (सा. 345); 'जेहि खोजत कल्पौ गया, घटहि माहिं सो मूर' (सा. 282)। एक स्थान पर कबीर कहते हैं—'राम नाम इहै निजु सारा, औरों झूठ सकल संसारा' (रमैनी 65/5) जिसका अर्थ है व्यक्ति का निजस्वरूप का नाम 'राम' है। बाकी संसार के सारे नाम (चाहे राम हो, कृष्ण हो) झूठ हैं।

कबीर के समय में काशी से 50 कि.मी. दूर जौनपुर मुसलमान शासकों का मजबूत गढ़ था जो मूर्तिभंजक थे। काशी के उत्तर में 10 कि.मी. की दूरी पर बौद्ध धर्म

1. अरण्यकाण्ड 32/4, 33 एवं 33/1।

का गढ़ सारनाथ है जहां उस समय भी बुद्ध-मूर्ति की पूजा हुआ करती थी। परन्तु बनारस-काशी के क्षेत्र में शायद ही कोई राम मंदिर या कृष्ण मंदिर हो। स्वामी रामानंद जिन्होंने राम-सीता-लक्ष्मण की भक्ति दर्शन का सिद्धान्त दिया वे कबीर से कुछ ही वर्ष उम्र में बड़े रहे होंगे। कहने का तात्पर्य कि रामानंदी-धारा के आधार पर मूर्ति एवं मंदिर का निर्माण कबीर के समय शैशवावस्था में ही था। अतः कबीर को किसी मूर्ति से आकृष्ट होना स्वाभाविक नहीं है। इसके अतिरिक्त उनके माता-पिता इस्लाम धर्म मानते थे और स्वभावतः पिता के साथ मस्जिद अवश्य ही जाया करते होंगे। इस्लाम का मौलिक स्वरूप निर्गुणवादी है और मुसलमान मूर्तिभंजक थे। कबीर मुस्लिम परिवार के थे। शासक दल का नीच से नीच मुसलमान भी प्रथम दर्जा का नागरिक होता है और ब्राह्मण दोयम दर्जे का। मुसलमानों ने काशी के शिव मंदिर को तोड़ डाला पर किसी ने नहीं रोका तो मुसलमान-कबीर को मंदिर जाने से कौन रोक सकता था। अगर यह मान भी लिया जाये कि कबीर को राम की मूर्तियों को देखने से रोका गया तो उससे पहले यह मानना जरूरी होगा कि स्वामी रामानंद कबीर के गुरु थे लेकिन अनेक आलोचक इसे कतई मानने को तैयार नहीं हैं। दूसरी बात यह कि दलित इसलिए मुसलमान बन रहे थे ताकि उन्हें दलित होने का दंश सहना नहीं पड़े। लेकिन कबीर मुसलमान बने नहीं रहना चाहते थे। कबीर को दलित मानने के लिए मानना पड़ेगा कि वे हिंदू थे जिसका कोई आधार नहीं है। सिद्धांततः मुसलमान सवर्ण और दलित में भेद नहीं करता जिसका जीता-जागता उदाहरण है कि वे ईदगाह में भेदभाव रहित हो पंक्तियों में बैठकर नमाज अदा करते हैं फिर एक ही दस्तरख्वान के चारों तरफ बैठकर रोजा तोड़ते समय उठा-उठाकर खाते हैं। वहां छोटी-छोटी थाली या प्लेटें नहीं होतीं बल्कि बड़ी-सी चादर पर खाने की चीजें सजाकर रख दी जाती हैं।

वस्तुतः फिरकापरस्ती से कबीर को सख्त नफरत थी, उन्होंने कहा—

"तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा॥
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहु धौं काहि निहोरा॥
वेद-पुराण कितेब कुराना, नाना भाँति बखाना॥"
(शब्द 48)

"हिन्दू तुरुक कहाँ ते आया, किन्ह यह राह चलाया॥"
(शब्द 84)

परन्तु कबीर का मानना है कि सारे मनुष्यों की जाति एक है—

नाना रूप वर्ण एक कीन्हा, चारि वर्ण वै काहु न चीन्हा॥
नष्ट गये कर्ता नहिं चीन्हा, नष्ट गये औरहिं मन दीन्हा॥
नष्ट गये जिन्ह बेद बखाना, बेद पढ़े पर भेद न जाना॥
(रमैनी 63)

महाभारत के शांति पर्व में भी इस तर्क को रखा गया है—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
(188/10 शांति पर्व)

"पहले वर्णों में कोई अन्तर नहीं था। ब्रह्माजी से उत्पन्न होने के कारण यह सारा जगत ब्राह्मण ही था।" 'दलित-ब्राह्मण' तथा 'ऊंच-नीच' के वर्गीकरण के सिद्धान्त को कबीर ने बार-बार नकारा है।

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणि को जाया।
और राह दे काहे न आया॥
जो तू तुरुक तुरुकनि को जाया।
पेटहि काहे न सुन्नति कराया॥
(बी. र. 62)।

—"ब्राह्मणी से जन्म लेकर सच्चा ब्राह्मण कहलाता है तो दूसरे रास्ते से क्यों नहीं पैदा हुए और तुर्की मुसलमानीन से जन्म पाकर तुर्क होने का घमण्ड है तो पेट में से सुन्नत कराकर क्यों पैदा नहीं हुए। (मुसलमानों में तुर्क के मुसलमान उस समय अपने को असली मुसलमान मानते थे)

'गुप्त प्रगट है एकै दूधा। काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा।' (रमै. 26) गुप्त या प्रकट मनुष्य की एक ही जाति है, किसको ब्राह्मण और किसको शूद्र कहा जाये।

यह सब जानते हैं कि शूद्र एवं स्त्री को न उपनयन संस्कार का अधिकार है और न वेद पढ़ने का अधिकार। भागवत पुराण (1/4/25) में आया है 'स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा'—स्त्रियां, शूद्र एवं कुब्राह्मण (जो वैदिक आचरण नहीं करता—द्विजबन्धू) वेदों को नहीं पढ़ सकते। परन्तु संत कबीर स्त्री-पुरुष में भेदभाव को बुरा मानते हैं—

पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया।
वो जन्म की शूद्रिन परसे, तुम पांड़े क्यों खाया॥

(शब्द 84)

दरअसल वैदिक संस्कार में उपनयन के पश्चात वेद पढ़ने का अधिकार मिलता है। अतः जनेऊ 'द्विज' होने का प्रमाण है। इस आधार पर ब्राह्मण-स्त्री भी शूद्र हैं। कबीर कहते हैं—

'बड़े गये बड़ापने, रोम-रोम हंकार।
सतगुरु के परिचै बिना, चारों बरन चमार॥'

(साखी 139)

'द्विज गोरे और शूद्र काले' इस अहंकार को पालने वाले बड़े-बड़े लोग नीचे गिर गये। 'काला-गोरा' चमड़े का रंग होता है। चमड़े की पहचान उसे होती है जो चमड़े का व्यवसाय करता है, यानी चमार को। जब तक सद्गुरु से दैहिक बुद्धि को छोड़ने का ज्ञान नहीं मिलता तब तक चारों वर्ण के लोग चमार हैं।

उपास्य के सम्बन्ध में डॉ. युगेश्वर लिखते हैं—'कबीर के उपास्य (स्वामी) अनाम हैं। नामरहित हैं। रूप तो है ही नहीं। नाम भी नहीं है। यही ठीक है। कबीर एक ऐसे स्वामी के उपासक हैं जिसका रूप नहीं है। नाम भी नहीं है। जो नाम-रूप रहित है। राम नाम तो उन्होंने वैसे ही रख लिया है जैसे किसी का नाम होता है। यही कारण है कि उन्हें राम और रहीम में अंतर नहीं लगता है। विराट प्रभु को राम-रहीम कुछ भी कहो क्या फर्क पड़ता है? असल में तो वह न राम है, न रहीम है। कहने के लिए वह राम भी है। रहीम भी है। (कबीर समग्र, पृ. 121-22)। यह एक ईमानदार समझ है और निरपेक्ष भी।

विचाराधीन प्रसंग में 'पीव' और लौकिक प्रेम की प्रतीकात्मक भाव समेटे एक प्रसिद्ध भजन है जिसका बोल है—

घूंघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलेंगे।
घट-घट में वहि साईं बसत है, कटुक वचन मत बोल रे।

उक्त पंक्तियों का भाव है—तू अज्ञान का पर्दा हटा दे तो तुम्हें अपने स्वामी का साक्षात्कार होगा। वह तेरा स्वामी सभी प्राणियों में वास करता है अतः किसी से कटु शब्द मत बोल। कटु वचन से हृदय-मंदिर के स्वामी का अपमान होगा।

धन जोबन का गर्व न कीजै, झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे।

धन और जवानी का गर्व न कर क्योंकि यह 'पंच रंग चोल' मानव शरीर पांच विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श एवं शब्द) से सुसज्जित झूठा है (लौकिक प्रेम का आकर्षण शरीर में होता है, धन और जवानी में होता है)। सुन्न महल (हृदय-मंदिर) में विवेक-बुद्धि का दीपक जला ले और विषय-भोगों की आशा में मत भटक (लोक प्रेम में रंगमहल होता है जिसकी सजावट रंग-बिरंगे फूलों एवं झालरों से होती है। स्त्री-पुरुष के बीच प्रेमालाप के लिए विवेक और ज्ञान नहीं वरन् शारीरिक ओज एवं तेज का प्रदर्शन वांछित है। महात्मा बुद्ध को रंगमहल की चमक-दमक एवं सुंदरियों का झुंड भी गृहत्याग से रोक न पाये थे क्योंकि बुद्ध के हृदय में विवेक का दीप प्रज्वलित हो चुका था। उसी अवस्था के लिए कबीर प्रेरित करते हैं)। अंतिम दो पंक्तियां आत्मदेव को पाने के लिए मार्गदर्शक हैं—

'जोग जुगत से रंग महल में, पिय पाये अनमोल रे।
कहैं कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रहे॥'

जोग (योग-साधना) और जुगत (युक्ति-तरकीब, योजना) से कबीर के रंगमहल में आत्मदेव रूपी पति से मिलन होता है। वह अनमोल पीव है। तब वहां अनाहत नाद की ध्वनि होती है, आनंद और उल्लास होता है।

इस पद से रोमियो-जूलियट का लौकिक प्रेम और लौकिक उपासना का अर्थ नहीं बनता। मिलता-जुलता भाव का एक भजन और मिलता है—

करो यतन सखी साईं मिलन की।
गुरिया गुरबा सूप सुपलिया, तज दे बुध लरिकैयां खेलन की।
देव पितर और भुइयां भवानी, यह मारग चौरासी चलन की।
ऊंचा महल अजब रंग बंगला, साईं को सेज वहां लागी फुलन की।
तन मन धन सब अर्पण कर वहां, सुरत संभार पर पइयां सजन की।
कहैं कबीर निर्भय हो हंसा, कुंजी बता दूँ ताला खुलन की।

इस पद का अर्थ पिछले पद से अलग नहीं है। यहां उपास्य से मिलने के लिए यत्न करने का उपदेश है, बचपना छोड़ने की बात है जिसमें गुड्डा-गुड्डी और सूप-सुपलिया का खेल होता था। आज के बच्चे वीडियो गेम खेलते हैं। देव, पितर, भुइंया-भवानी का पूजा-पाठ चौरासी लाख योनियों में भटकने का रास्ता है। जिस उपास्य-स्वामी से मिलने की प्रेरणा कबीर देते हैं उसका महल ऊंचाई पर है, उसका बंगला अजब ढंग का है। साईं की सेज (बिस्तर) फूलों से सजी है, वहां अपना तन, मन और धन अर्पण कर दे। सुरत संभार का विशेष अर्थ है। सुरत का अर्थ स्मृति (memory) संभार-थामना (to recollect) अर्थात मन-मंदिर में विराजमान सजन का चिंतन-मनन कर; निर्विकल्प होकर उसी में रम जा और विनीत भाव से सजन (God-उपास्य) के समक्ष नतमस्तक हो जा। कबीर कहते हैं कि हे विवेकी (हंसबुद्धि) मानव, तू निर्भय हो जा, स्वामी से मिलने का रहस्य यही है जो मैं तुझे बता रहा हूं।

—क्रमशः

महापुरुषों का आचरण अमृत है

लेखक—श्री शिवप्रसाद मिश्र

मेरे परिचित डॉ. शर्मा जिनकी आयु अस्सी वर्ष के आसपास है एक दिन घरेलू सामान का झोला लिये अपने निवास की ओर जा रहे थे। एक हाथ में छड़ी, दूसरे हाथ में थैला। मुझे लगा इनका सहयोग करना चाहिए। ये वृद्ध सज्जन पुरुष हैं। शायद नौकर छुट्टी पर होगा इसीलिए इस आयु में इतना परिश्रम कर रहे हैं। मैंने उन्हें प्रणाम किया और विनम्रतापूर्वक आग्रह किया कि यह झोला मुझे दे दीजिए, मैं आपके निवास तक पहुंचा देता हूं। आपको कष्ट हो रहा होगा। उन्होंने मुस्कुराकर आर्शीवाद देते हुए कहा—नहीं बेटा, झोला मुझे लिये रहने दो, किन्तु मेरे साथ मेरे निवास तक चलो। मैं कुछ समझ नहीं पाया, किन्तु जैसा उन्होंने कहा उनके निवास तक गया। वे स्वयं अपनी कुर्सी पर बैठे और मुझे सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत किये। बोले—आप मेरे साथ चाय पीकर जाओ। उन्होंने आगे कहा—बेटा, आपको अपने घर तक आने का कष्ट क्यों दिया। इसी प्रश्न का उत्तर आपको समझाना चाहता हूं। चाय तो एक बहाना है। आपने रास्ते में मुझसे सामान से भरा झोला इसलिए मांगा था कि आप मेरी सेवा-सहायता कर सकें। मैंने झोला देने से इनकार कर दिया इससे आपके मन में कुछ उथल-पुथल अवश्य हुई होगी।

डॉ. शर्मा ने आगे कहा—मिश्र जी, मेरे कुछ उसूल हैं—जिन्हें आपको बताना चाहता हूं। शायद आपको अच्छा लगे।

आज का मनुष्य वर्तमान में जीना नहीं चाहता। या तो वह अतीत की कहानियों में जीता है अथवा भविष्य की कल्पनाओं में। जीवन के कुछ क्रम होते हैं जो बिना किसी प्रयास के घड़ी की सुई की तरह आगे बढ़ते रहते हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापा ये जीवन के महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं। ये स्वतः प्रभावी होते हैं। इनके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। बीता हुआ समय और किया

हुआ शौर्य-पराक्रम पुनः पकड़ में नहीं आता। जैसे एक बूढ़ा तैराक तेज धार बहती नदी के किनारे बैठकर सोचता है कि वह कितनी बार इस नदी की चंचल तरंगों को अपनी बांह से काटता हुआ नदी के उस पार गया है और आज उसकी शिथिल बांहें नदी से एक गिलास पानी लेने में भी असमर्थ हैं। वह अपनी जवानी की कल्पना में डूबा हुआ है। उसे चाहिए कि वह अपने बुढ़ापे का आदर करे और उसके अनुरूप बात सोचे।

आप विचार करें, जब हम बचपन से किशोर अवस्था के बीच थे तो सोचते थे जवानी कितनी जल्दी आ जाये। यहां तो सबकी डांट सहनी पड़ती है। कोई पानी मांगता है तो कोई और काम सौंपता है क्योंकि हम छोटे हैं, सबकी सहनी पड़ती है। सीधा कहें तो हम बचपन से ऊब जाते हैं और जवानी की कामना करते हैं। जो जवान हैं उनकी जिन्दगी कितना सुखमय है, वे घर के मालिक हैं, जो चाहे करें, जवानी के दिन कितने आनन्ददायक होते हैं।

उम्र बढ़ती है, बिना किसी प्रयास के बचपन अपने आप छूट जाता है। जवानी आ जाती है, फिर हम जवानी से ऊब कर या तो अपने बचपन को याद करते हैं, सोचते हैं कि शायद वही जीवन ठीक था या फिर सोचते हैं कि बुढ़ापा ही ठीक है। जो रिटायर्ड हैं उनको देखिए, न उनके पास कोई काम है, न कोई जिम्मेदारी। समय पर भोजन कर लेते हैं और ठाट से सोते हैं। जब चाहें कहीं घूमने चले जाते हैं, जब चाहें चार-आठ लोगों के साथ कहीं गपशप कर रहे हैं। मजे की बात तो यह है कि वे एक दूसरे को कहते हैं कि यह समय भगवान के भजन का है। पर यह भी एक उपेदश मात्र ही है। भजन में मन नहीं लगता। भजन तो निरन्तर अभ्यास की बात है।

उम्र आगे बढ़ती है, बुढ़ापा भी आ जाता है। अब जिस बुढ़ापे की खुशी हम जवानी की निगाह से देख रहे थे, वह दुखदायी दिखने लगी। गांठ का दर्द, कमर की पीड़ा और अनेक रोगों के आक्रमण से हम पीड़ित होने लगते हैं। फिर सोचते हैं जवानी ही ठीक थी। इसी उथल-पुथल में जीवन बीत जाता है। हम जीवन के किसी पड़ाव पर उसके अनुरूप नहीं जी पाते। फिर आगे तो मृत्यु और मृत्यु का भय ही दिखने लगता है। हमें चाहिए हम जीवन के जिस पड़ाव पर हैं उसे आदर के साथ जियें। उससे समझौता करें, वर्तमान संवर जायेगा तो सब कुछ सुधर जायेगा।

डॉ. शर्मा ने पुनः कहा—मिश्र जी, इतना ही बताने के लिए आपको घर ले आया था। मेरा अपना उसूल है कि अपना कार्य अपने से करना चाहिए। मुझे याद है यह आदत मैंने अपनी किशोरावस्था से डाली है। आज बूढ़ा हो चुका हूं किन्तु पूरा प्रयास करता हूं कि अपना कार्य अपने से करूं। इसका अभ्यास बने रहने से कोई पीड़ा नहीं होती। मन प्रसन्न रहता है। अपेक्षाएं कम रहती हैं तो जीवन सुखमय संतोषमय रहता है। वर्तमान की परिस्थितियों को सुलझाएं, न भागें न विचलित हों। ऐसे में आत्मविश्वास बढ़ता है। श्रम करने में न शरम करनी चाहिए न संकोच, तब नीरसता कभी पास फटकती नहीं और इसीलिए मैंने झोला आपको नहीं दिया। आप इसके लिए बुरा नहीं मानिएगा।

मैंने विनम्रता से डॉ. शर्मा को साधुवाद देते हुए कहा—डॉ. साहब, आपकी बातों से बुरा मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि आपका यह शिक्षाप्रद उपदेश जीवन की अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने का महामंत्र है। लोग ठीक ही कहते हैं संत गृहस्थ आश्रम में भी होते हैं। सच पूछिए तो आज का मनुष्य अपने जीवन मार्ग से भटक गया है। अतीत की कहानियों और भविष्य की कल्पनाओं में वह कहीं उलझ गया है। जिस कार्य को हम सहज कर सकते हैं उसे करने में शरमाते हैं। कोई क्या कहेगा, यह सोच-सोचकर अपना जीवन निष्क्रिय बना देते हैं। ऐसी विस्मय की जिन्दगी को आप ऐसे सत्पुरुष और किसी सद्गुरु की आवश्यकता है और तभी समाज की दिशाहीन गति को ठहराव मिल सकता है।

मैंने जिज्ञासावश डॉ. शर्मा से पूछा कि कृपा करके हमें यह भी बतायें कि इस तरह का पवित्र संस्कार आप में वंश परम्परागत है या आपकी अपनी उपज। डॉ. साहब बोले—मिश्र जी, मेरे माता-पिता तो स्वयं में शुभ संस्कारों के पुंज थे। उनसे मुझे जो कुछ मिला वही तो मेरे लिए उनकी मूल विरासत है। तथापि मैंने जीवन की रहनी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से सीखा। उनकी आत्मकथा कई बार पढ़ा। उससे जो मुझे सीख मिली मैंने अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया। दुनिया उन्हें राजनेता मानती है, मैं उन्हें भारत का एक महान संत मानता हूं। एक छोटा-सा उदाहरण उनकी आत्मकथा से प्रस्तुत है—"वकालत का मेरा धन्धा अच्छा चल रहा था पर उससे मुझे संतोष नहीं था। जीवन अधिक सादा होना चाहिए, कुछ शारीरिक सेवा होनी चाहिए। यह मंथन मन में चलता ही रहता था। इतने में एक दिन कोढ़ से पीड़ित एक अपंग मनुष्य मेरे घर आ पहुंचा। उसे खाना देकर विदा कर देने को दिल तैयार न हुआ। मैंने उसे एक कोठरी में ठहराया। उसके घाव साफ किये और उसकी सेवा की।" (आत्मकथा से साभार)। इस छोटे से प्रसंग को ईमानदारी से चिंतन करके महात्मा गांधी के जीवन की ऊंचाई और उनकी गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है। वे अपना कार्य स्वयं करते थे। सात्त्विक भोजन में उन्हें विश्वास था। सारा संसार जानता है कि गांधी जी ने सत्य और अहिंसा का कवच पहनकर देश की आजादी की लड़ाई में गरिमामयी विजय हासिल की।

कर्तव्य मार्ग पर महात्मा गांधी न चल सकें इसके लिए अंग्रेजों ने उन्हें कितनी यातनाएं दी। कितना अपमानित किया, उन पर सड़े अंडे और पत्थर फेंके, उन पर जूते-चप्पल बरसाये, किन्तु वह महापुरुष अपने सिर पर शुभ संकल्पों की गठरी लिए सत्य और कर्तव्य मार्ग पर आजीवन चलता रहा। आज देश स्वतंत्र है किन्तु हम अपने कर्तव्य मार्ग से विमुख हैं। अनैतिक धन-सम्पत्ति को बटोरने में जीवन को सौंप दिया है। देश की आजादी के यज्ञ में हुए बलिदानों को हम भूल गये।

कबीर

रचयिता—श्री देवकी नन्दन 'शान्त'

गाते हुए 'कबीर' को घर से चले, जो हो सो हो
दुश्वारियों की धूप में, हम-तुम जले, जो हो सो हो

ता उम्र भेद-भाव से लड़ते रहे, 'कबीर' जंग
ये आँख भी खुली उसी, बिरवा तले, जो हो सो हो

निश्चिन्त-मस्त ही रहे, दुष्टों के बीच भी 'कबीर'
भट्ठी में कर्म की उसी, हम हैं ढले, जो हो सो हो

जी-जी के सच को, प्रेम की, साखी 'कबीर' बन गये
तप-तप के आँच में इसी, हम भी पले, जो हो सो हो

जो 'शान्त' हैं 'कबीर' से हमने उन्हें नमन किया
अन्याय-झूठ को मगर, हम खले, जो हो सो हो

आज स्वावलम्बन और स्वाभिमान के गीत न तो किसी बांसुरी से झरते हैं, और न उन्हें कोई सुनने वाला ही है। कभी निम्न प्रकार के गीत केवल गुनगुनाने के लिए ही नहीं थे, अपितु उनका आचरण किया जाता था।

प्यास से जलते अधर पर रख लिए अंगार मैंने,
पर किसी से भी कभी चाही नहीं रस धार मैंने।
मैं मिटाता औ बनाता जा रहा संसार अपना,
स्वप्न का अपने किया है धूल से शृंगार मैंने।
मैं सदा पतझर में भी उत्सव मनाता आ रहा हूँ,
पर किसी ऋतुराज को पा शक्ति इठलाया नहीं हूँ।

इन्हीं पंक्तियों के साथ डॉ. शर्मा गम्भीर हो गये। मैंने विनम्रतापूर्वक उनसे कहा कि उनके विचार आज बिखरते हुए समाज के लिए जीती-जागती प्रेरणा हैं। इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब देश-समाज में विकृतियां छायी हैं महापुरुषों ने, संत-महात्माओं ने ही बागडोर सम्हाली है। बिना सद्गुरुओं के न कभी अंधकार मिटा है न मिटेगा। सफल जीवन के लिए किसी महापुरुष-सद्गुरु के जीवन से सीख लेना चाहिए।

शंका समाधान

प्रष्टा—आलोक, हरदोई, उ.प्र.

1. **प्रश्न**—अभिमान और अहंकार में क्या अंतर है?

उत्तर—सामान्यतः अभिमान और अहंकार दोनों का एक ही अर्थ होता है। अहंकार को अभिमान का बढ़ा हुआ रूप कहा जा सकता है। दोनों के अर्थ में जो सूक्ष्म अंतर है उसे भाषा विज्ञानी ही अच्छी तरह से बता सकते हैं, परंतु मोटे रूप में दोनों के अंतर को हम इस तरह समझ सकते हैं—प्राप्त प्राणी-पदार्थों से स्वयं को जोड़कर अपने को बड़ा मानना अभिमान है। जैसे—मैं बड़ा रूपवान हूं, धनवान हूं, बलवान हूं, विद्वान-ज्ञानी-प्रवक्ता-लेखक हूं, मेरा बड़ा परिवार है, जमीन, जायदाद, धन, नाम, यश, कीर्ति-प्रतिष्ठा है, मैं बड़ा प्रसिद्ध हूं—यह भाव अभिमान है। मेरे समान रूपवान, बलवान, धनवान, विद्वान, ज्ञानी, प्रवक्ता, लेखक दूसरा कौन है, कौन है जो मुझसे टक्कर ले सके, मेरे सामने सिर उठाकर खड़ा हो सके, मेरे पास क्या कमी है जो मैं दूसरों के सामने झुकूं—यह भाव अहंकार है।

2. **प्रश्न**—प्रशंसा और चापलूसी में क्या अन्तर है?

उत्तर—किसी के विशेष गुण, कर्म, योग्यता को देखकर प्रसन्न होना और उसकी सराहना करना प्रशंसा है। प्रशंसा सच्चे दिल से की जाती है और इसमें सामने वाले से कुछ पाने की, स्वार्थपूर्ति की भावना नहीं होती। किसी से कुछ पाने के लिए उसकी झूठी प्रशंसा करना, जिसमें जो गुण नहीं है उसका आरोपण कर उसका बखान करना चापलूसी है। चापलूसी केवल जबान से निकलती है और इसका मुख्य उद्देश्य स्वयं का स्वार्थ साधना होता है। जब तक स्वार्थ पूरा होता रहता है तब तक चापलूस व्यक्ति साथ में रहता है और झूठी प्रशंसा करता रहता है, किन्तु जब उसका स्वार्थ पूरा हो जाता है तब साथ छोड़ देता है या स्वार्थ पूरा न होने पर निंदा करना शुरू कर देता है।

हर मनुष्य को चाहिए कि वह किसी के अच्छे काम की प्रशंसा जरूर करे, किन्तु अपने लिए प्रशंसा न चाहे। झूठी प्रशंसा करने वाले या बात-बात में मौका-बेमौका प्रशंसा करने वालों से सावधान रहे, अन्यथा धोखा खाना पड़ सकता है।

प्रष्टा—सुरेश कुमार, धमतरी, छत्तीसगढ़

1. **प्रश्न**—सद्गुरु कबीर ने कहा है—कर्म करे और रहे अकर्मी। तो कर्म करते हुए अकर्मी कैसे रहा जा सकता है?

उत्तर—मनुष्य का जीवन कर्मप्रधान है। कोई भी मनुष्य बिना कर्म किये रह नहीं सकता। मनुष्य जीवन पर्यंत असंख्य लोगों के कर्मों के फल का उपभोग करता रहता है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां दूसरों के सहयोग की अपेक्षा न होती हो। दूसरों के सहयोग के बिना मनुष्य एक दिन भी नहीं जी सकता। इसलिए उसे चाहिए कि अपने जीवन-निर्वाह तथा आत्मकल्याण के साथ-साथ दूसरों के लिए भी कुछ-न-कुछ करता रहे। परन्तु कर्म करते हुए भी कर्तृत्व का अहंकार न रखे। जो करे सहज कर्तव्य भाव से करे और मन से निष्काम रहे तो वह कर्म करते हुए भी अकर्मी हो सकता है।

ध्यान दें, यदि कोई व्यक्ति बाहर से चुपचाप निष्क्रिय बैठा हुआ है, कुछ करता हुआ दिखाई नहीं दे रहा है तो यह नहीं मान लेना चाहिए कि वह अकर्मी है। बाहर से निष्क्रिय दिखते हुए भी अंदर-मन से वह भयंकर कर्मी हो सकता है, यदि उसका मन सांसारिक कामनाओं में उलझा हुआ है, राग-द्वेष में डूबा हुआ है। इसके विपरीत बाहर से तो कोई खूब कर्मशील-कर्मतत्पर दिखाई दे रहा है, किन्तु कर्म करते हुए भी उसका मन निष्काम, कर्म-फल की आकांक्षा से रहित है, तो वह कर्म करते हुए भी अकर्मी है।

मनुष्य अच्छा-बुरा जो कुछ करता है देर-सबेर उसके अच्छे-बुरे फल तो आयेगा ही, परंतु यदि वह सारे अशुभ कर्मों का तो त्याग कर दिया है, जो कुछ करता है शुभ ही करता है वह भी सहज कर्तव्य भाव से, कर्म फल के प्रति उसकी कोई आसक्ति नहीं है, तो

वह कर्म करते हुए भी अकर्मी ही है। और यही जीवन जीने का बढ़िया तरीका है।

प्रष्टा—अनीता कुमारी सिंह, झूंसी, इलाहाबाद

1. **प्रश्न**—इतने अधिक धार्मिक क्रिया कलाप, पूजा-अनुष्ठान के बाद भी मनुष्य दुखी एवं रोगग्रस्त क्यों है?

उत्तर—पहले यह समझना होगा कि दुख एवं रोग का कारण क्या है। दुख का मूल कारण है मानसिक विकार, अत्यधिक भोगलालसाएं, कामना-तृष्णा और रोग का मूल कारण है गलत खान-पान, रहन-सहन। यदि मनुष्य जीवन निर्वाहिक काम-धंधा करते हुए अपनी भोगलालसाओं, कामना, तृष्णा पर संयम रखता है, मानसिक विकारों का त्यागकर मन को निर्मल-निर्विकार रखता है, प्रतिकूलताओं को धैर्य एवं विवेकपूर्वक सहन करते हुए अपना उचित कार्य व्यवहार करता रहता है तो वह मानसिक दुखों से अपने को बचा सकता है। इसी प्रकार खान-पान, रहन-सहन को सात्त्विक एवं संयमित रखकर शरीर को रोगग्रस्त होने से बचाया जा सकता है।

आज मनुष्य धार्मिक होने का नहीं किन्तु धार्मिक दिखने का प्रयास ज्यादा कर रहा है। वह जो कुछ धार्मिक क्रिया-कलाप, पूजा-अनुष्ठान करता हुआ दिखता भी है तो उसके मूल में आचरण-व्यवहार की शुद्धता, मन की निर्मलता नहीं किन्तु कोई-न-कोई भौतिक लालसा-कामना, स्वार्थ-पूर्ति की ही भावना ज्यादा रहती है। तब दुख एवं रोग से छुटकारा कैसे पा सकता है।

किसी प्रकार का कर्मकाण्ड एवं पूजा-अनुष्ठान धर्म नहीं है। अपितु सदाचार, नैतिकता, आत्मसंयम धर्म है। दुखों से छुटकारा इनसे मिलेगा न कि पूजा-अनुष्ठान मात्र से। संयत, स्वस्थ एवं निर्मल मन एवं आचरण वाला व्यक्ति किसी कारण से शरीर के रोगग्रस्त होने पर भी दुखी नहीं होगा, भले ही उसके शरीर में रोग के कारण दर्द, पीड़ा हो रहा हो। इसलिए दुख एवं रोग से छुटकारा पाने के लिए जीवन में धर्म का आचरण करें न कि कर्मकाण्ड एवं पूजा-अनुष्ठान।

प्रष्टा—सुकर्मा, बिहिया, भोजपुर, बिहार

1. **प्रश्न**—कहा जाता है कि प्रकृति के रहस्य-नियम को कोई पूरा का पूरा नहीं जान सकता, फिर यह भी कहा जाता है कि महासागर के किसी एक किनारे के थोड़े से जल के गुण को जान लेना पूरे जल के गुणों को जान लेने के समान है, ऐसा क्यों?

उत्तर—कहीं के जल का समुचित ढंग से परीक्षण कर उसके गुण-धर्मों को जान लेने पर संपूर्ण जलराशि के गुण-धर्मों को जाना जा सकता है, क्योंकि कहीं का भी जल हो उसका गुण-धर्म समान ही होगा, बटलोई के चावल के एक दाने को छूकर देख लेने पर पूरी बटलोई के चावल की स्थिति जाना जा सकता है, क्योंकि पूरी बटलोई के चावल की स्थिति एक जैसी होती है, गेहूं के एक दाने का समुचित ढंग से परीक्षण कर लेने पर गेहूं के संपूर्ण दाने के गुण-धर्मों को जाना जा सकता है क्योंकि गेहूं के सम्पूर्ण दानों के गुण-धर्म एक समान होते हैं, परन्तु इसी प्रकार प्रकृति के किसी एक नियम को जान लेने पर प्रकृति के संपूर्ण नियमों-रहस्यों को नहीं जाना जा सकता, क्योंकि ये रहस्य असंख्य हैं।

इसको एक उदाहरण से समझें। दुनिया के किसी कोने में रहने वाले किसी एक मनुष्य के शरीर का समुचित ढंग से परीक्षण करके दुनिया के सभी मनुष्यों के शरीर की संरचना एवं बनावट को जाना-समझा जा सकता है क्योंकि दुनियों के सभी मनुष्यों के शरीर की संरचना, बनावट, उसमें लगे भौतिक-रासायनिक तत्त्व एक समान होते हैं और प्रयोगशाला में इसका परीक्षण हो सकता है, किन्तु किसी एक मनुष्य के मन का अध्ययन करके सभी मनुष्यों के मन की दशा-स्थिति को पूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता, क्योंकि मनुष्य का मन बदलने वाला है और इसका पूरा का पूरा प्रयोगशाला में परीक्षण नहीं हो सकता।

चूंकि पूरी प्रकृति के संपूर्ण रहस्यों का अभी तक परीक्षण नहीं हो सका है और होना संभव भी नहीं लगता इसलिए प्रकृति के संपूर्ण रहस्यों को जाना नहीं जा सकता। हां, इतना अवश्य है पूरी प्रकृति में सर्वत्र

कारण-कार्य की एक अटूट व्यवस्था है। इसमें कोई भी घटना अचानक घटित नहीं होती। हर घटना के पीछे कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है, हम उसे न समझ पायें यह अलग बात है।

फिर पूरी प्रकृति के संपूर्ण रहस्यों-नियमों को जानकर क्या करेंगे। इसे तो इसका अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों के लिए छोड़ दें। हम-आप प्रकृति के जितने रहस्यों-नियमों को जानते हैं, उनके अनुसार जीवन-व्यवहार करें। नियम विरुद्ध कुछ भी न करें। बस हमारा काम बन जायेगा।

2. प्रश्न—हिन्दुओं में मृत शरीर को जलाने के पीछे क्या रहस्य है?

उत्तर—यह एक रस्म है और अत्यंत पुरानी रस्म है। वेद में भी मृत शरीर को जलाने की बात आयी है। वैसे वेद (अथर्ववेद 18/2/34) में मृतक को जमीन में गाड़ने, सूनसान जगह में खुले रूप में रख देने, जलाने या किसी पेड़ तथा गुफा में रख देने का वर्णन आता है।

हिन्दुओं में मृत शरीर को जला देने के पीछे यह कारण बताया जाता है कि जमीन में गाड़ देने पर आत्मा (जीव) शरीर के मोहवश गाड़े हुए शरीर के आस-पास तब तक भटकती रहती है जब तक मृतशरीर सड़-गलकर पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाता। जला देने पर मृत शरीर कुछ ही देर में नष्ट हो जाता है, जिससे आत्मा मोहवश नहीं भटकती है। उस शरीर से निराश हो जाती है। किन्तु यह एक मान्यता मात्र है।

मृत शरीर को जमीन में गाड़ देने पर बहुत-सी जमीन कब्रिस्तान या श्मशान के रूप में बेकार चली जाती है, किन्तु जला देने पर यह बात नहीं रहती, इसलिए जला देना चाहिए, ऐसा कहा जाता है।

जिस जीव के रहने पर शरीर से नाता था वह जीव तो शरीर छोड़कर चला गया, अब शरीर केवल लाश के रूप में रह गया है। जहां जैसी योग्यता हो जलाने, गाड़ने, जल प्रवाह करने या खुले में कहीं रख देने की, उस प्रकार से कर लेना चाहिए। किसी बात को लेकर हठ नहीं करना चाहिए।

—धर्मेन्द्र दास

आनंद अनुभूति

रचयिता—श्रीमती मीना जैन

आत्मा विषय नहीं तर्क का
नहीं विषय यह बातों का
आत्मा विषय विवेक का
अपूर्व आनंद अनुभूति का...

क्लेश जुड़े कलेवर से
आत्मा अक्लेश अविनाशी
आत्म ज्ञान न मिले हाट में
भटको चाहे मथुरा-काशी
आत्म पथ पर ज्योति निरंतर
पथ विषयों से विरक्ति का...

जैसे स्वर्ण तत्त्व एक है
आभूषणों के नाना रूप
आत्मा अपनी अजर-अमर
देह धरे नित अभिनव रूप
मैं आत्म रूप, निर्मल स्वरूप
प्रतीक उज्ज्वल आकृति का...

जिसने आत्म-तत्त्व जाना
अपना स्वरूप स्वयं पहचाना
जग में रहता जग को भूला
जैसे हो कोई देश विराना
स्वर्ग-नर्क सब ही पृथ्वी पर
प्रशस्त मार्ग आत्म-प्रवृत्ति का...

सदाचरण की राह यही
जीवन जीने की कला यही
आत्म-स्थिति में जो आए
उसके लिए आनंद लोक यही
परमात्म रूप वह बन जाए
अनुसरण करे जो आत्म-रीति का...

कहानी

कोठी का चिराग

लेखक—श्री विजय चितौरी

रात करीब दस बजे का समय रहा होगा। घंटे भर से चल रही तेज बारिश अब थम गयी थी। हां, बूंदाबांदी अभी भी हो रही थी। पानी थमने के इंतजार में बैठे शिवदयाल के साथी रामदीन और नरेश अपने-अपने घर जाने के लिए उठ खड़े हुए। लेकिन शिवदयाल अभी उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं थे। जेब से बीड़ी की कट्टी निकाली, उन्हें सुलगाया और दोनों को थमा दिया।

यह यहां का लगभग रोज का क्रम है। शाम को शिवदयाल के दो-चार पड़ोसी उसके यहां आ जाते हैं। यहां उठने-बैठने का अच्छा सुभीता तो है ही, पान-सुपारी, बीड़ी कुछ-न-कुछ नशापत्ती का जुगाड़ भी रहता है। इसी बहाने घंटे-दो घंटे गप-शप होती है। भजन-कीर्तन भी हो जाता है। किसान-मजदूर को चाहिए ही क्या? इतने मात्र से उसकी दिन भर की थकान मिट जाती है और वह अगले दिन के लिए फिर तरोताजा हो जाता है।

अभी तीनों बीड़ी के एक-दो कश ही ले पाये थे कि दूर कहीं से कोई आवाज आती सुनाई दी। आवाज की टोह लेने रामदीन बाहर आ गया। ध्यान से आवाज सुनी—'अरे, यह तो गरीबदास की आवाज है! कमिश्नर की कोठी का चौकीदार। कुछ सांप...सांप जैसा बोल रहा है।' रामदीन का माथा ठनका। उसने हाथ में पकड़ी बीड़ी वहीं फेंक दिया और लौटकर शिवदयाल को सूचना दी—'कक्का, गरीबदास की आवाज है, कमिश्नर बंगला का चौकीदार। सांप...सांप चिल्ला रहा है। क्या किया जाये?'

'करना क्या, तुरन्त कोठी पर चलना चाहिए।' शिवदयाल ने तपाक से जवाब दिया। उसने झटपट अपनी बीड़ी जमीन पर रगड़ कर बुझायी और चारपाई से उठ खड़ा हुआ।

'और वे पिछली बातें...?' रामदीन ने सवाल किया। शिवदयाल बोले—'रामदीन, बहस का समय नहीं है। संकट के समय अगर दुश्मन भी पुकारे तो उसका साथ देना चाहिए। चलो सभी चलो, गांव के कुछ और लोगों को भी आवाज लगा दो।'

रामदीन ने बहस आगे नहीं बढ़ाई। सरपट बाहर आया, चबूतरे पर खड़े हो गरीबदास को आवाज लगाई कि वह आ रहा है, साथ में और लोग भी आ रहे हैं।

दूरदराज के इस गांव में शहरों के निकटवर्ती गांवों जैसी आपाधापी नहीं है। जीवन की रफ्तार धीमी है। लोग एक दूसरे के यहां उठते-बैठते हैं, एक दूसरे के सुख-दुख में भागीदार बनते हैं। इसीलिए यहां इंसानियत अभी बची हुई है। यही कारण है कि कोठी से नफरत के बावजूद वहां से मदद की गुहार आने के बाद गांव वाले लाठी, डंडा, टार्च वगैरह लेकर कोठी की ओर निकल पड़े।

कोठी गांव से मुश्किल से आधे किलोमीटर दूर होगी। यह दूरी होती ही कितनी है। साफ रास्ता हो तो दौड़ता हुआ आदमी तीन-चार मिनट में पहुंच जायेगा। लेकिन वहां यही दूरी पहाड़ बन गयी है। करीब दो साल पहले तक जब यह कोठी नहीं बनी थी रास्ता सपाट सीधा था। लोग इसी तरफ से निकलते थे। काफी चौड़ी और ढालू स्थान होने के कारण बरसात का पानी भी इधर से ही निकलता था। यह जमीन पुराने जमींदार अच्छन मियां की थी। कभी इसमें आम का बगीचा हुआ करता था। बाद में अधिकांश आम के पेड़ गिर चुके थे। और यह बावन बीघा का पूरा रकबा उनके नाम से ही खाली पड़ा रहा।

करीब दो साल पहले अच्छन मियां के बेटे आबकारी कमिश्नर सुलेमान हैदर नौकरी से रिटायर हुए। अब उन्हें अपनी पुश्तैनी जमीन की देखरेख की चिंता हुई। उन्होंने इस पूरी जमीन की घेराबंदी शुरू की। चारों तरफ ऊंची चहारदीवारी बनवाई। अन्दर पूरे क्षेत्र में फलदार बाग लगवाये। बाग के बीचोबीच एक आलीशान कोठी बनवायी। जब इच्छा होती है शहर वाली कोठी में रहते हैं और जब मन करता है यहां आ जाते हैं।

कोठी और उसके चारों तरफ चहारदीवारी बन जाने से गांव वालों का आम रास्ता तो बन्द हुआ ही साथ-

साथ गांव के चारों ओर जलभराव की समस्या भी उत्पन्न हो गयी। इन समस्याओं की आशंका के कारण ही चहारदीवारी बनते समय गांव वालों ने उसका विरोध किया था। उस समय गांव वाले कमिश्नर साहब से मिले थे और आग्रह किया था कि एक किनारे जलनिकासी और संपर्क मार्ग के लिए जगह छोड़ दी जाये। लेकिन तब कमिश्नर साहब ने गांव वालों की फरियाद पर कोई ध्यान नहीं दिया था। बड़ी रुखाई से कहा था—'हमारी जमीन है, हम घेर रहे हैं। आप लोगों से क्या मतलब? हां, अगर कोई समस्या है तो आप लोग सरकार से जाकर कहो।'

गांव वालों को उस समय कमिश्नर साहब की यह बेरुखी बहुत खराब लगी थी। लेकिन वे कर ही क्या सकते थे? मन मसोसकर घर बैठ गये। लेकिन युवा वर्ग इतनी आसानी से बैठ न सका। एक रात गांव के आठ-दस युवक एकत्र होकर चहारदीवारी का कुछ हिस्सा गिरा दिये। कमिश्नर साहब को लगा कि गांव वाले चुनौती दे रहे हैं। उन्होंने पुलिस बुला ली। उस समय पुलिस ने जो पुलिसिया तांडव किया था उसे याद करके आज भी गांव वाले सिहर उठते हैं। जो जहां मिला था उसे जमकर लठियाया गया था। औरतों-बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया था। यही नहीं दस-बारह लोगों को जेल भी भेज दिया गया था। तब से गांव वालों को कोठी से नफरत हो गयी थी। लेकिन आज जब उसी कोठी पर मुसीबत आयी तो सभी पुराने गिले शिकवे भूल गांव वाले कूदते-फांदते कोठी पर पहुंच गये।

कमिश्नर साहब के नाती याने बिटिया के बेटे दस वर्षीय कादिर को सांप ने डसा था। घर में कोहराम मचा था। चौकीदार के अलावा इस समय यहां मात्र दो महिलाएं थी—साहब की पत्नी और बेटी याने कादिर की मां। दोनों दहाड़ मारकर रो रही थी। बार-बार आंचल फैलाकर अल्ला-ताला से बेटे के जीवन की भीख मांग रही थीं। कादिर, मां का एकमात्र चिराग था। नाना कमिश्नर साहब का भी यही एकमात्र सहारा था। साहब को कोई बेटा नहीं था। मात्र यही एक बेटी थी जिसका बेटा कादिर आज संकट में है।

घटना की सूचना मोबाइल द्वारा कमिश्नर साहब को पहले ही दी जा चुकी थी। वे वहां से करीब ढाई सौ किलोमीटर दूर राजधानी में थे। वहां से वे चल भी चुके थे। लेकिन वे कितनी भी जल्दी करें यहां तक आने में उन्हें कम से कम तीन-चार घंटे लग जायेंगे। कमिश्नर साहब ने यह सूचना कुछ रिश्तेदारों और मित्रों को भी दे दी है। लेकिन वे सब के सब शहर में रहते हैं। वे लोग यहां आने के लिए चल भी चुके होंगे। लेकिन शहर भी यहां से कम से कम पचास किलोमीटर दूर है। वे सब भी डेढ़ घंटे के पहले यहां नहीं पहुंच पायेंगे। तब तक तो काफी देर हो जायेगी। कादिर को तो तत्काल डॉक्टरी सुविधा की आवश्यकता थी।

रामदीन और अन्य गांव वालों को कोठी पर आया देख चौकीदार को थोड़ा ढाढ़स हुआ। जल्दी-जल्दी उसने सारी घटना बता दी कि किस तरह कादिर बेटा उठकर पेशाब करने बाथरूम में गया था और वहां पहले से बैठे सांप ने उसे डस लिया।

कुछ लोग बाथरूम की ओर सांप को खोजने दौड़े जबकि रामदीन ने तुरन्त आगे की योजना पर अमल शुरू किया। चौकीदार ने यह होशियारी की थी कि पांव में जहां सांप ने डसा था उसके ऊपर उसने पैर को कस कर बांध दिया था। रामदीन ने चौकीदार से ब्लेड मंगवाई। डसे हुए स्थान पर उसने क्रास के आकार का गहरा चीरा लगाया। जितना खून निकाल सकता था, निचोड़कर निकाल दिया और उस स्थान पर एक पट्टी बांध दी।

रामदीन ने झटपट एक चारपाई ली। उस पर कादिर को लिटाया। स्वयं उसने और नरेश ने चारपाई को आगे पीछे से उठायी और अस्पताल की ओर भागे। गांव वाले भी उनके पीछे-पीछे अस्पताल चल दिये। कादिर की मां और नानी भी रोती-कलपती सबके पीछे चल दीं।

स्थानीय बाजार यहां से करीब दो किलोमीटर दूर है। यहां दो अस्पताल हैं। एक सरकारी और दूसरा डॉ० चड्ढा का प्राइवेट अस्पताल। रामदीन को सरकारी अस्पताल पर विश्वास नहीं था। पता नहीं वहां कोई डॉक्टर मिले न मिले। मिले भी तो पता नहीं दवा उपलब्ध है या नहीं। उसने डॉ० चड्ढा के अस्पताल की

ओर रुख किया। संयोग से डॉ० चड्ढा मिल भी गये। वे अभी जग रहे थे। कादिर को तुरन्त गहन चिकित्सा कक्ष में दाखिल करके इलाज शुरू कर दिया गया। अस्पताल के कर्मचारियों ने सभी गांव वालों को अस्पताल के अहाते में ही रोक दिया। कादिर की मां और नानी को अंदर जाने दिया गया।

रात करीब एक बजे से कमिश्नर साहब के इक्के-दुक्के रिश्तेदारों का अस्पताल आना शुरू हुआ। गांव वाले अभी अस्पताल के अहाते में अधीर अवस्था में बैठे थे। जब तक उन्हें कादिर की सलामती की कोई सूचना नहीं मिल जाती तब तक उनके वहां से हटने का सवाल ही नहीं था।

भोर करीब चार बचे कमिश्नर साहब की कार अस्पताल के सामने आकर रुकी। कमिश्नर साहब जल्दी-जल्दी कार से उतरे। बदहवास-से लग रहे थे। बिना कुछ इधर-उधर देखे और बिना किसी से कुछ बोले सीधे अस्पताल के अन्दर घुस गये। उनके पीछे-पीछे उनका ड्राइवर भी अन्दर चला गया।

डॉ० चड्ढा अभी भी इमरजेंसी रूप में ही हैं। कादिर बेड पर है। उसको अब भी ग्लूकोज और दवा चढ़ाई जा रही है। कादिर की मां और नानी भी कमरे में एक बेंच पर बैठी हैं। कमिश्नर साहब को एकाएक कमरे में आते देख बुत बने सभी लोग चैतन्य हो उठे। दोनों महिलाएं उठकर खड़ी हो गयीं। कादिर ने भी गर्दन टेढ़ी करके नानाजी को देखा। साहब सीधे कादिर के पास गये। उसके माथे पर हाथ फेरा। 'कादिर बेटे...कैसे हो'... कहते हुए उसे चूम लिया। सीधे खड़े हुए, दोनों हाथ ऊपर उठा अल्ला ताला को धन्यवाद दिया। आंख बंद कर कुछ बुदबुदाए और फिर डॉक्टर की ओर मुखातिब हुए।

'कमिश्नर साहब, बच्चा खतरे से बाहर है। दो घंटे बाद आप इसे ले जा सकते हैं।' कहते हुए डॉक्टर चड्ढा उठकर खड़े हो गये।

कमिश्नर साहब की आंखों में खुशी के आंसू छलक आये। रूमाल निकालकर आंसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—'डॉक्टर साहब, आपने आज हमारे परिवार के चिराग को बुझने से बचा लिया। मैं आजीवन आपके इस उपकार का बदला नहीं चुका पाऊंगा....'

'नहीं सर, इस चिराग को बचाने में मुझसे कहीं ज्यादा योगदान तो इन बेचारे गांव वालों का है जो बिना कोई देरी किये इस बरसाती रात में बच्चे को यहां तक लाये।'

डॉ० चड्ढा अपने कक्ष की ओर चले गये। लेकिन उनकी कही हुई बात कमिश्नर साहब को अन्दर तक बेध गयी। उन्हें डॉक्टर की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। वे पत्नी और बेटी से कुछ पूछते इसके पहले ही सिसकती हुई बेटी आकर उनके सीने से लग गयी। रोते-रोते उसने बताया—'पापा, अगर आज गांव वाले मदद में आगे न आते तो हमारा कादिर हमसे हमेशा के लिए...।'

कमिश्नर साहब ने बेटी को दिलासा दिया। सुबकती हुई पत्नी को भी समझाया। थोड़ी देर में जब स्थिति कुछ सामान्य हुई तो पत्नी ने कहा, 'जाओ, गांव वाले बेचारे बाहर अस्पताल के अहाते में अभी बैठे होंगे। उन्हें कादिर की सलामती की सूचना दो, उनसे किये अपने पूर्व कर्मों के लिए क्षमा मांगो। और हां, उन्हें खाली हाथ मत लौटाना।'

'सबको सौ-सौ रुपये दे दूं...?' साहब ने कहा।

कमिश्नर साहब के इस वाक्य से उनकी पत्नी के तन-बदन में आग लग गयी। आंखें निकालकर बोली—'होटलों और पार्टियों में फूंकने के लिए तुम्हारे पास लाखों हैं। लेकिन जिन गांव वालों ने आज हमारी कोठी के चिराग को बुझने से बचाया है उनके लिए सौ रुपये...। सबको कम-से-कम एक-एक हजार दो, अभी इसी वक्त। और हां, कल सुबह तुम्हारे बगीचे की चहारदीवारी टूट जानी चाहिए। जिधर से उनका पानी निकलता था और जिधर से वे सब निकलते थे।'

कमिश्नर साहब ने ड्राइवर के हाथ से हैंडबैग लिया। उसमें से एक हजार रुपये वाली गड्डी निकाली। उसे जेब में रखा और बाहर निकले।

अरे...अहाते में तो कोई था ही नहीं। उन्होंने अस्पताल के बाहर झांका। वहां भी कोई नहीं दिखा। हां, वह चारपाई जरूर वहां पड़ी थी जिसपर लिटाकर कादिर को अस्पताल लाया गया था।

कमिश्नर साहब थोड़ी देर वहीं अहाते में मौन खड़े रहे, फिर भारी कदमों से अस्पताल के अन्दर चले गये।

बीजक चिंतन

परोक्ष-भक्तिरूपी चुनरी का चित्रण तथा राम और कृष्ण-भक्ति का ऐतिहासिक अध्ययन

शब्द-81

ऊतो रहु ररा ममा की भाँति हो, सब सन्त उधारन चूनरी॥
बालमीक बन बोइया, चुनि लीन्हा शुकदेव॥
कर्म बिनौरा होइ रहा हो, सूत काते जयदेव॥
तीन लोक ताना तनो है, ब्रह्मा विष्णु महेश॥
नाम लेत मुनि हारिया, सुरपति सकल नरेश॥
विष्णु जिभ्या गुण गाइया, बिनु बस्ती का देश॥
सूने घर का पाहुना, तासों लाइनि हेत॥
चारि वेद कैंड़ा कियो, निराकार कियो राछ॥
बिने कबीरा चूनरी, मैं नहिं बाँधल बारि॥

शब्दार्थ—ऊतो = भक्तजन। ररा ममा की भाँती = रामनाम की तरह। उधारन = उद्धार के लिए। बन = कपास[1]। बिनौरा = बिनौला, कपास के बीज। हेत = प्रेम। कैंड़ा = औजार, वह यंत्र जिससे किसी वस्तु का नक्शा उतारा जाता है, मानदंड, पैमाना। निराकार = परमात्मा, शिव, विष्णु[2]। राछ = ताने का तागा उठाने-गिराने का जुलाहों का एक औजार। कबीरा = उपासक, भक्त। चूनरी = चुनरी, लाल जमीन का कपड़ा जिस पर सफेद या दूसरे रंग की बूटियां बनी हों, तात्पर्य में भक्तिरूपी साड़ी। बारि = वारि, हाथी बांधने की जंजीर, हाथी फंसाने का गड्ढा या फंदा, हाथी बांधने का स्थान, तात्पर्य में बन्धन[3]।

भावार्थ—वे तो सब भक्ति-पथ के संतजन संसार के उद्धार के लिए राम-नाम की भांति किसी नाम का आधार लेकर भक्ति की चुनरी बुनते रहे॥ 1॥ इस क्रम में सर्वप्रथम वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण लिखकर और श्री रामचन्द्र का महत्त्व प्रदर्शित कर मानो इस दिशा में कपास बोया। पीछे शुकदेव मुनि ने आकर उसे चुन लिया और कृष्ण-भक्ति पर प्रकाश डाला॥ 2॥ कर्मरूपी बिनौला निकालकर प्रसिद्ध भक्त जयदेव ने गीतगोविन्द लिखकर मानो उसका सूत कात डाला॥ 3॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के नाम पर संसार में भक्तिरूपी चुनरी बुनने का ताना तना गया॥ 4॥ इस प्रभाव में आकर मुनिजन, देवताओं के सहित इन्द्र तथा समस्त भक्त राजे-महाराजे भी नाम जपते-जपते थक गये, परन्तु उस नामी को नहीं पाये॥ 5॥ पंडितों ने पुराणों में विष्णु की जबान से ऐसे भगवान तथा स्वर्ग का गुणगान करवाया जो बिना बस्ती के देश के समान घोर काल्पनिक है। जैसे किसी सूने एवं निर्जन घर में पहुना जाये तो उसका क्या स्वागत होगा, वैसे पंडितों ने भक्तों को कल्पित भगवान तथा स्वर्गरूपी सूने घर का पहुना बनाया और कहा कि उन्हीं से प्रेम करो॥ 6-7॥ सभी मत के भक्तों ने अपना भक्ति-नक्शा खींचने के लिए चारों वेदों को अपना औजार बनाया और परमात्मा तथा सगुणरूप विष्णु और शिव को राछ बनाया और भक्ति-चुनरी बुनने लगे। कबीर साहेब कहते हैं किन्तु मैं इस बन्धन में किसी को नहीं बांधता॥ 8-9॥

व्याख्या—सद्गुरु कबीर ने यहां सगुण भक्ति को एक चुनरी के रूपक में उपस्थित कर उसका खाका खींचा है और उसका ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उसके घोर काल्पनिकरूप का दिग्दर्शन कराया है, जो बड़ा ही रोचक तथा मार्मिक है।

"ऊतो रहु ररा ममा की भांति हो, सब सन्त उधारन चूनरी।" वे सभी संत जो सगुण भक्ति-पथ के पथिक थे जगत-जीवों के कल्याण करने के विषय में सोचते रहे। उन्होंने सोच-विचार कर भक्ति की चुनरी बुनना शुरू किया। उस चुनरी के साथ राम-नाम जुड़ा। इसी भांति कृष्ण-नाम, नारायण-नाम, शिव-नाम आदि अनेक नाम जुड़े अर्थात नारायण, शिव, कृष्ण, राम आदि की भक्ति चलने लगी।

भक्ति-भावना मनुष्य के जीवन के साथ से है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में अनेक प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवता मानकर उनकी प्रार्थनाएं की

---

1. बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, कबीर रोड, वाराणसी॥
2. बृहत् हिन्दी कोश।
3. बृहत् हिन्दी कोश।

गयी हैं। ऋग्वेद के विष्णु सूक्त तथा वरुण सूक्त में भक्ति के बीज हैं। वैदिक साहित्य में 'भक्ति' शब्द संभवतः पहली बार श्वेताश्वतर उपनिषद् में आया "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।"[1] अर्थात जैसे देव में परम भक्ति होती है वैसे गुरु में होती है।

प्रवृत्तिमूलक रागात्मक सगुण भक्ति का प्रथम सूत्रपात संभवतः यादवों में हुआ। जहां से यदुवंश का आरम्भ हुआ है उसके मूल में 'अंशु' नामक एक पुरुष थे। उनके पुत्र 'सत्वत' थे जो महान प्रतापवान राजा हुए हैं। इन्हीं के नाम से 'सात्वत-वंश' चला। 'सात्वत-वंश' को आगे चलकर यादव वंश कहा जाता है। इन सात्वतों में ही वैष्णवों का भागवत संप्रदाय शुरू हुआ। कूर्म पुराण के अनुसार सत्वत ने नारद से भागवत-धर्म का उपदेश पाया। सात्वतों के द्वारा मथुरा-वृन्दावन से लेकर मध्य भारत, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिल आदि क्षेत्रों में भागवत-भक्ति फैली और ईसा के एक हजार वर्ष बाद तमिल एवं द्रविड़ देश से लौटकर कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात होकर मथुरा-वृन्दावन में आयी। इससे प्रभावित होकर भागवतकार ने यहां तक लिख दिया कि भक्ति द्रविड़ में पैदा हुई, कर्नाटक में बढ़ी, महाराष्ट्र में कुछ पुष्ट हुई, गुजरात में बूढ़ी हो गयी, परन्तु वृन्दावन में पहुंचकर पुनः युवती हो गयी।[2]

सात्वतों की भक्ति परम्परा को सात्वत-संप्रदाय कहा जाने लगा। इसमें पहले नारायण की उपासना थी। परन्तु सात्वत-वंश में आगे चलकर श्री कृष्ण एक युगपुरुष हुए जिन्होंने स्वयं नारायण का स्थान ग्रहण कर लिया। कृष्ण पहले नारायण एवं विष्णु के अवतार माने गये। आगे चलकर परब्रह्म परमात्मा बन गये। पहले यह सम्प्रदाय एकांतिक, नारायणीय तथा सात्वत नाम से जाना जाता था। जब यह कृष्ण की उपासना से जुड़ गया तब से भागवत-संप्रदाय कहलाने लगा।

ऐतिहासिक अध्ययन के अनुसार ईसा के चार सौ वर्ष पहले गीता की रचना हुई। इसमें श्री कृष्ण पूर्ण परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुए। तब तक दाशरथि राम की प्रतिष्ठा परमात्मा के रूप में नहीं थी। तब तक वे एक शस्त्रधारी वीर के रूप में माने जाते थे। गीताकार ने श्री कृष्ण के मुख से कहलवाया है कि मैं शस्त्रधारियों में राम हूं—रामः शस्त्रभृतामहम् (10/31)। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण-भक्ति ईसा के सैकड़ों वर्ष के पूर्व से प्रचलित थी, परन्तु दशरथ-पुत्र श्री राम ईस्वी सन् के आरम्भ के लगभग विष्णु के अंशावतार माने गये हैं, परन्तु उनकी पूजा-उपासना ग्यारहवीं शताब्दी तक शुरू हुई। सर रामगोपाल भंडारकर का भी कहना है कि यद्यपि ईस्वी सन् के आरम्भ से राम विष्णु के अवतार माने गये, किन्तु उनकी विशेष रूप से प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग ही आरम्भ हुई।

इतिहासवेत्ता डॉ. राजबली पांडेय लिखते हैं "वाल्मीकीय रामायण में राम का ऐश्वर्यस्वरूप तथा चरित्र बहुत ही उच्च तथा आदर्श नैतिकता से भरपूर है। परवर्ती कवियों, पुराणों और विशेषकर भवभूति (आठवीं शताब्दी का प्रथमार्ध) के दो संस्कृत-नाटकों ने राम के चरित्र को और अधिक व्याप्ति प्रदान की। इस प्रकार रामायण के नायक को भारतीय जन ने विष्णु के अवतार की मान्यता प्रदान की। इस बात का ठीक प्रमाण नहीं है कि राम को विष्णु का अवतार कब माना गया, किन्तु कालिदास के रघुवंश काव्य से स्पष्ट है कि ईसा की आरंभिक शताब्दियों में यह मान्यता हो चुकी थी।....यद्यपि राम का देवत्व मान्य हो चुका था, परन्तु राम-उपासक कोई संप्रदाय इस दीर्घकाल में था, इस बात का प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि 11वीं शताब्दी के बाद रामसंप्रदाय का आरम्भ हो चुका था।"[3]

पहले कुरुक्षेत्र के आसपास भारत की रचना हुई। पीछे गंगा-यमुना के संगम के आस-पास वाल्मीकीय रामायण का छोटा रूप बना। इसके बाद महाभारत का रूप तैयार होकर भारत महाभारत हो गया। वाल्मीकीय रामायण में महाभारत के पात्रों तथा कथानक की चर्चा नहीं है और रामकथा के पात्रों तथा वाल्मीकीय रामायण का महाभारत में वर्णन है। "शांख्यायन आदि सूत्रों तथा

1. श्वेताश्वतर उपनिषद् 6/23।
2. श्रीमद्भागवतमाहात्म्य 1/48-50।
3. राम-हिन्दूधर्म कोश।

पाणिनि में भारत के विषय में निर्देश मिलते हैं, रामायण के विषय में नहीं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'भारत' की रचना रामायण के पूर्व हो चुकी थी।"[1] महाभारत के प्राचीन अंश (भारत) रामकथा के पात्रों की ही चर्चा करते हैं, रामायण की नहीं, किन्तु महाभारत के अपेक्षया नवीन अंश रामायण की चर्चा करते हैं। ईसा के चार सौ वर्ष पहले हुए पाणिनि के अष्टाध्यायी के व्याकरण के नियमानुसार वाल्मीकीय रामायण की रचना है ऐसा विद्वान मानते हैं। रामायण के पात्रों की चर्चा तो लोकगीत में बहुत पहले से थी; परन्तु वाल्मीकि की रामायण ईसा के तीन सौ साल के पहले से बनना शुरू हुआ।

सद्गुरु कबीर सामान्य हिन्दू-परम्परा की मान्यता के आधार पर कहते हैं 'बालमीक बन बोइया, चुनि लीन्हा शुकदेव।" वाल्मीकि महाराज ने रामायण नाम का आदि महाकाव्य लिखकर मानो भक्तिरूपी चुनरी बुनने के लिए बन बो दिया। बन कहते हैं कपास को और वन कहते हैं जंगल को, यह भेद ध्यान में रखना चाहिए। वाल्मीकि ने रामायण संक्षेप में लिखी और उसमें राम का मानवीय रूप रखा, यह रूप उदात्त था। पीछे के कवियों ने उसमें कथा जोड़कर राम आदि चारों भाइयों को विष्णु का अंशावतार घोषित कर दिया। उसके बाद अन्य कवियों ने अपनी नयी-नयी रामायणों में राम को अनन्त ब्रह्मांड नायक बना दिया। वाल्मीकीय रामायण में राम को उच्चदृष्टि से देखा गया, परन्तु उनके नाम-जप की उसमें कहीं चर्चा नहीं की गयी कि राम-राम जपने से मोक्ष होगा या पाप कटेगा। यह तो पीछे की रामायणों में राम को भक्तवत्सल कहा गया तथा उनका कथा-कीर्तन करना रामायण का अर्थ माना जाने लगा। शुकदेव जी ने इस भक्ति के कपास को चुन लिया। उन्होंने ब्रह्मज्ञान सहित कृष्ण-भक्ति का वर्णन भागवत आदि ग्रन्थों में प्रस्तुत किया। अथवा कहना चाहिए कि पंडितों ने शुकदेव के मुख से भागवत पुराण में ब्रह्मज्ञान सहित कृष्ण-भक्ति का वर्णन करवाया। भागवत पुराण भक्ति का प्रमुख ग्रन्थ है जिसमें रास पंचाध्यायी तक है, उसके साथ है "महाभारत का शांतिपर्व, भगवद्गीता, पांचरात्रसंहिता, सात्वतसंहिता, शांडिल्यसूत्र, नारदीय भक्तिसूत्र, नारदपंचरात्र, हरिवंश, पद्मसंहिता, विष्णुतत्त्वसंहिता, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि के ग्रन्थ।"[2]

"कर्म बिनौरा होइ रहा हो, सूत काते जयदेव।" कर्मरूपी बिनौले को निकालकर जयदेव ने इसका सूत काता। जयदेव का संस्कृत भाषा में लिखा गीतगोविन्द एक महत्त्वपूर्ण तथा ललित काव्य है। भाषा प्रांजल, सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। यह राधामाधव का विरह काव्य श्रृंगाररस से पूर्ण है। गीतगोविन्द का प्रभाव कृष्ण चैतन्य पर भी पड़ा, जिनके द्वारा बंगाल में राधामाधव को श्रेय देकर एक भक्ति आंदोलन खड़ा हुआ।

"तीन लोक ताना तनो है, ब्रह्मा विष्णु महेश। नाम लेत मुनि हारिया, सुरपति सकल नरेश।" तीन लोक का अर्थ है पूरा संसार और यह पूरा संसार मानो भारतवर्ष ही है क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव की मान्यता भारतवर्ष या वृहत्तर भारत में ही है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर ने संसार में भक्ति का ताना तना। अथवा पंडितों ने इनके नाम के आधार पर भक्तिकाव्य फैलाया। अथवा रज, सत, तम मानो तीन लोक हैं और ये ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं। इन तीनों गुणों वाले मनुष्यों में भक्ति का प्रचार मानो भक्ति का ताना फैलाना है। सरल अभिप्राय यह है कि किसी देहधारी भगवान की अवधारणा कर उसके नाम-जपादि रूप भक्ति का प्रचलन हुआ। उस नाम को जपते-जपते मुनि, इन्द्र तथा सभी भक्त राजे-महाराजे भी हार गये, परन्तु वह भगवान उन्हें नहीं मिला। तात्पर्य यह कि भक्त-गण अपनी आत्मा से अलग किसी परमात्मा की कल्पना कर उसके नाम रटते रहे, उसका कथा-कीर्तन करते रहे, उसके लिए रोते-धोते रहे, परन्तु वह कभी भी उन्हें दर्शन नहीं दिया। कितने भक्त अपने भावावेश में एवं अपने मन की कल्पना में उसे देखते रहे, परन्तु कभी उन्हें उसका साक्षात्कार नहीं हुआ। इसलिए भक्तों के लिए "हारिया" शब्द का यहां प्रयोग किया गया।

1. रामकथा, पृष्ठ 46।

2. हिन्दू धर्म कोश, पृष्ठ 464।

"विष्णु जिभ्या गुण गाइया, बिनु बस्ती का देश। सूने घर का पाहुना, तासों लाइनि हेत।" पंडितों ने पुराणों में विष्णु के मुख से या वैष्णव महात्माओं के मुख से स्वर्ग का सुन्दर खाका खिंचवाया है। साकेतलोक, ब्रह्मलोक, गोलोक एवं शिवलोक तथा अनेक नाम लेकर स्वर्ग का बड़ा मनोरम वर्णन किया गया है और उसमें रहने वाले भगवान की तो सुन्दरता का वर्णन ही असंभव है। उनमें अनादि से अनन्त काल तक होने वाली रासलीला का भी प्रबन्ध कर लिया गया है। साहेब व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि यह सब बिना बस्ती के देश का वर्णन है। भक्त लोग ऐसे देश का वर्णन करते हैं जहां कोई बस्ती नहीं है। अर्थात यह सब घोर कल्पना एवं निराधार बातें हैं। सूने घर में पहुना जाये तो उसका कौन स्वागत करे! ऐसी जगह में हेत लगाना, ऐसी जगह में प्रेम करना जहां मन की कल्पना को छोड़कर कुछ नहीं है, वहां जीव को क्या मिलेगा!

"चारि वेद कैंड़ा कियो, निराकार कियो राछ। बिने कबीरा चूनरी" भक्तों ने चारों वेदों को कैंड़ा बनाया है। कैंड़ा का अर्थ है मानदंड एवं नक्शा बनाने का यंत्र। कोई भी संप्रदाय निकला तो उसके प्रवर्तक ने यही कहा कि यह वेद समर्थित है, जिस भक्ति का मैं प्रचार कर रहा हूं, उसका मूल वेदों में है। यहां तक कि वेद के 'राधा'[1] शब्द को घसीटकर उस 'राधा' से जोड़ दिया गया जो न महाभारत में है और न रासपंचाध्यायी वाले भागवत पुराण में है, जो पीछे से भक्त-कवियों द्वारा कृष्ण की प्रेयसी बना दी गयी है। वेद विस्तृत हैं, उनमें अनेक ऐसी संज्ञाएं हैं जिनके उनके अपने अर्थ हैं; किन्तु उनमें से जो शब्द अपने अनुकूल पड़ते हैं संप्रदाय-प्रवर्तक लोग उसे अपना अर्थ देकर कहते हैं कि देखो, मेरे मत का वर्णन वेदों में है। यहां तक कि पौराणिक कबीरपंथियों ने ऋग्वेद (10/103/1) के 'एकवीरः' को ऐ कबीर, अर्थ कर उसमें कबीर की तलाश कर ली जबकि वहां उसका अर्थ अद्वितीय वीर है, जो इन्द्र के लिए प्रयुक्त है।

कबीर साहेब यहां कहते हैं कि समस्त भक्तिपथ के पथिकों ने वेदों को अपना कैंड़ा बनाया, अपने भक्ति-नक्शा को खींचने का औजार बनाया अथवा भक्ति-साड़ी बीनने के लिए सूत नापने का गज बनाया और निराकार को राछ बनाया। राछ वह यंत्र है जो वस्त्र बुनते समय ताने को उठाता-गिराता है। यहां निराकार का अर्थ परमात्मा या उसके सगुणरूप शिव और विष्णु है, जिसे इसके शब्दार्थ में देख लिया गया है। हिन्दू समाज के सारे भक्ति-संप्रदाय शिव और विष्णु की धुरी पर नाचते हैं। त्रिदेवों में ब्रह्मा को भक्ति-आलंबन की जगह से खारिज कर दिया गया है, केवल शिव और विष्णु ही भक्ति के आलंबन बनाये गये। पीछे के जितने महापुरुषों को परमात्मा का रूप दिया गया उन्हें विष्णु का अवतार कहा गया या शिव का। निराकार का अर्थ लोकप्रसिद्ध परमात्मा तो है ही, जिसके तथाकथित सारे अवतार भक्ति के आलंबन बने। साहेब कहते हैं कि इन्हीं आधारों को लेकर भक्तजन भक्ति की चुनरी बुनते हैं। पहले एक ईश्वर की कल्पना की जाती है, इसके बाद उसके सगुण-रूप में शिव तथा विष्णु की कल्पना की जाती है, इसके बाद इनके अनेक अवतारों की कल्पना की जाती है और इन पर वेद की मुहर मारकर सर्वमान्य भक्ति का रूप देने का प्रयास किया जाता है।

"मैं नहिं बाँधल बारि" 'बृहत हिन्दी कोश' में वारि के अर्थ—जल, वर्षा, सुगंधबाला, ह्वीवेर (एक गंध द्रव्य), एक वृत्त, सरस्वती आदि हैं तथा हाथी बांधने की जंजीर, फंदा आदि भी है। यहां पर बारि का अर्थ बन्धन है। साहेब कहते हैं "मैं नहिं बाँधल बारि" मैं किसी को उक्त प्रकार की भक्ति के बन्धन में नहीं बांधता हूं।

व्यक्ति की अपनी चेतना एवं आत्मा से अलग परमात्मा, उसके साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण रूप, उसके अवतार आदि सब काल्पनिक हैं। इन्हीं कल्पनाओं की भाव-विह्वलता में पड़कर भक्त लोग भक्ति की चुनरी बुनते हैं और अपने अनुगामियों को उसे पहनाते हैं। अर्थात उन्हीं मान्यताओं में उन्हें बांधते हैं।

---

1. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता॥ (ऋग्वेद 1/30/5)
अर्थ—धन-रक्षक और स्तोत्र-पात्र इन्द्र! तुम्हारा ऐसा स्तोत्र तुम्हारा प्रतिभाप्रिय और सत्य हो। (टीका-रामगोविन्द त्रिवेदी, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग)

कबीर साहेब कहते हैं कि मैं ऐसा बन्धन किसी को नहीं देता। आत्मा के अलावा कोई परमात्मा नहीं है जिसके चक्कर में पड़कर भटका जाये। इसीलिए साहेब ने उसे "बिनु बस्ती का देश" तथा भक्तों को "सूने घर का पाहुना" कहकर उन पर व्यंग्य किया है; और अन्त में अपने आपको इस काल्पनिक भक्ति के माया-जाल से अलग बता दिया है।

कबीर साहेब ने वैराग्य-बोधसंपन्न प्रत्यक्ष सद्गुरु-संतों की उपासना बतायी है "गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार।"[1] गुरु से निज स्वरूपबोध प्राप्तकर अपनी चेतना में स्थित हो जाना ही परा भक्ति है। कबीर साहेब के ख्याल से जीव ही शिव है, आत्मा ही परमात्मा है और अपनी आत्मा में स्थित हो जाना ही सर्वोच्च भक्ति है।

वाल्मीकि

एक वाल्मीकि महर्षि कश्यप तथा अदिति के नवम पुत्र वरुण (आदित्य) से पैदा हुए माने जाते हैं। इनकी माता का नाम चर्षणी तथा भाई का नाम भृगु कहा जाता है। वरुण का दूसरा नाम प्रचेत भी है इसलिए वाल्मीकि को प्राचेतस भी कहा जाता है। इनके विषय में विविध कथाएं मिलती हैं। कोई इन्हें ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न मानता है और कोई शूद्र-कुल में। हो सकता है दोनों कुलों में भिन्न-भिन्न वाल्मीकि हुए हों। कौन वाल्मीकि रामायण लेखक थे कहना कठिन है। वैसे रामायण के लेखक को लोग यही मानते हैं कि वे निम्न कहे जाने वाले कुल में जन्मे थे। उनका नाम रत्नाकर था तथा वे कर्म से डाकू थे। वे जंगल में रहते थे और जो राहगीर मिलता था उसका सब कुछ छीनकर उसे मार डालते थे। उन्हें एक बार सप्तऋषि या नारद मिले। उनके साथ भी उन्होंने वही बरताव करना चाहा। उन्होंने कहा कि क्या यह सब पाप तुम्हारे परिवार वाले बंटायेंगे? परिवार वालों से पूछने पर वे पाप के भागीदार होने से अस्वीकार कर दिये। रत्नाकर को ग्लानि हुई। वे इस पाप कर्म को परित्याग करने का प्रण करके तपस्या में लग गये। समाधि में बैठे रहने से उनके चारों तरफ दीमकी का ढूह लग गया। दीमकी के ढूह को वल्मीक कहते हैं। जब वे समाधि से उठकर वल्मीक से निकले तो उनको वाल्मीकि कहा जाने लगा। ये तमसा नदी के तट पर रहते थे। ये एक बार स्नान करने जा रहे थे। रास्ते में एक घटना घटी। एक क्रौंच एक क्रौंची परस्पर काममोहित होकर आलिंगन में थे। उसी समय एक व्याध ने बाण से क्रौंच को मार दिया। नर क्रौंच मर गया। क्रौंची व्याकुल हो उठी। यह दृश्य देखकर करुणावेश में वाल्मीकि के कंठ से यह अनुष्टुप छंद निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

अर्थात "हे निषाद! तूने काम-मोहित युगल क्रौंच में से एक, अर्थात नर-क्रौंच का वध किया है, इसलिए तू बहुत वर्ष तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकेगा।" कहा जाता है कि इसी छन्द के बाद उन्होंने रामायण की रचना की जिसका नाम वाल्मीकीय रामायण पड़ा।

शुकदेव

महर्षि वेदव्यास द्वारा किसी शुकी नामक स्त्री में शुकदेव को पैदा किया गया था। शुकदेव अपनी किशोर-अवस्था में ही माता-पिता को छोड़कर विरक्त हो गये थे। ये एक परम विरक्त के रूप में प्रसिद्ध हैं।

जयदेव

कहा जाता है कि बंगाल में अजय नदी के तट पर किंदुबिल्व नामक ग्राम में जयदेव जी रहते थे। कहते हैं कि केंदुली नाम से यह ग्राम आज भी प्रसिद्ध है। इनका जीवनकाल तेरहवीं शताब्दी में माना जाता है। ये बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के राज-दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि ये विरक्ति भाव से रहते थे, परन्तु आगे चलकर इन्होंने एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात इन्होंने संस्कृत में 'गीतगोविन्द' नामक काव्य की रचना की। ये ज्यादा राधा के भक्त थे। इनका गीतगोविन्द शृंगाररस से पूर्ण है और जगह-जगह ज्यादा अश्लीलतापूर्ण है। जयदेव, चण्डीदास तथा विद्यापति के काव्यों से चैतन्य महाप्रभु बहुत प्रेम रखते थे तथा उन्हें गाया करते थे। बंगाल में 'राधाकृष्णगीत' नाम का काव्यग्रंथ भी जयदेव जी का ही माना जाता है।

1. बीजक, साखी 304।

धारावाहिक उपन्यास

संत कबीर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

(गतांक से आगे)

कबीर के जन्म काल में दिल्ली सल्तनत की जो दशा थी उसमें सुधार होने के बजाय निरंतर गिरावट ही हुई थी। प्रांतीय शासकों के सहयोग, एकता, समन्वय एवं संगठन की कमी के कारण केन्द्रीय शक्ति अत्यंत कमजोर हो चुकी थी। वह कोई भी बाहरी आघात सहने की स्थिति में नहीं थी। इसी बीच तैमूर लंग ने अपनी विशाल सेना लेकर आंधी की तरह भारत पर आक्रमण कर दिया। इस वक्त बालक कबीर यही कोई छह महीने का रहा होगा।

तैमूर के आक्रमण का उद्देश्य ही धन-संपत्ति लूटना और मूर्तिपूजकों का विनाश करना था। वह काफिरों के विरुद्ध युद्ध करके अन्य धर्म को समाप्त करना और पैगंबर के अनुसार सच्चा धर्म स्वीकार करने को बाध्य करना चाहता था। वह सिरसा, कैथल, पानीपत होता हुआ, उन्हें लूटता और हत्याकांड करता दिसंबर 1398 ई. में दिल्ली पहुंचा। यहां सुल्तान महमूदशाह और तैमूर की सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में सुल्तान की पराजय हुई और वह गुजरात भाग गया। इस वक्त एक लाख व्यक्ति बंदी बनाये गये, इनमें महिला, पुरुष एवं बच्चे भी थे। तैमूर ने हिन्दुओं के कत्लेआम का आदेश दिया, जिसका परिणाम अत्यंत भयानक हुआ। 15 दिनों तक दिल्ली में निर्मम हत्याकांड चलता रहा। लूट में हीरे, लाल, रत्न, मोती, अशर्फियां, सोने, चांदी के जेवरात तथा कीमखाब के कपड़े बेहिसाब मात्रा में प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त सेना के हर सिपाही ने डेढ़-डेढ़ सौ व्यक्तियों को बंदी बनाया जिन्हें वे अपने साथ ले गये। तैमूर ने एक जनवरी 1399 ई. में वापसी की यात्रा प्रारंभ की। वह गाजियाबाद, वजीराबाद, मेरठ, हरिद्वार, जम्मू होता हुआ लाहौर पहुंचा। वापस लौटते हुए भी उसने युद्ध जारी रखा और लूटपाट तथा हत्याकांड करता रहा। यहीं पर उसने खिज्र खां को लाहौर, मुलतान और दीपालपुर का सूबेदार नियुक्त किया और स्वयं स्वदेश रवाना हो गया।

भारत को जितनी क्षति और दु:ख तैमूर ने पहुंचाया उतना उससे पहले किसी आक्रमणकारी ने एक आक्रमण में नहीं पहुंचाया था। तैमूर का आक्रमण बेहद भयावह और विनाशकारी था। इसकी वजह से दिल्ली, राजस्थान एवं उत्तर-पश्चिमी प्रांत पूरी तरह उजड़ गये। खेती-बाड़ी, व्यापार-उद्योग सब चौपट हो गया। हजारों व्यक्तियों के कत्ले आम के कारण महामारी फैल गई। शवों के सड़ने से जल एवं हवायें प्रदूषित हो गईं। हिन्दुओं के इस निर्मम हत्याकांड के कारण प्रभावित राज्यों में हृदय-विदारक स्थिति उत्पन्न हो गई तथा हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की वैमनस्यता की खाई और भी बढ़ गई। धन और साधन की कमी तो थी ही, आपसी सामंजस्य के अभाव में हर तरफ अफरा-तफरी एवं अनिश्चितता का माहौल था। हर प्रांत के शासक अपने राज्य की सुरक्षा को लेकर एक दूसरे से आशंकित और आतंकित रहते थे। यह स्थिति आम जनता के लिए अत्यंत दुखदायी थी, क्योंकि अपने राज्य की सुरक्षा की चिंता में डूबे शासक प्रजा की भलाई का काम करने में असमर्थ थे।

दिल्ली में हो रही तमाम उथल-पुथल के बीच भी काशी नगरी दिल्ली सल्तनत के अधीन ही बनी रही और यहां मुस्लिम शासकों के कायदे कानून ही चलते रहे। प्रत्येक हिन्दू को जजिया कर देना अनिवार्य था। एक तरह से यह मुसलमान न होने का जुर्माना था। इस आक्रमण के बाद हिन्दुओं को जबरन मुस्लिम धर्म अपनाने को बाध्य करने का वर्षों से चला आ रहा कुचक्र और तीव्र हो गया। फलत: जीवन रक्षा के लिए बाध्य होकर अनेक गरीब असहाय हिन्दू और नाथ धर्मावलंबी मुसलमान हो गये। इनमें अधिसंख्य कोरी जाति के लोग थे जो कपड़ा बुनकर अपनी आजीविका

चलाते थे। इस जाति में नाथपंथ का जबर्दस्त प्रभाव था। ये ब्राह्मणों की जातिगत श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करते थे। न ही अवतार में इनकी आस्था थी, इनमें निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी। बालक कबीर का नीरू-नीमा के जिस जुलाहा परिवार में पालन-पोषण हो रहा था उसने एकाध पुश्त पहले ही इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। इसलिए उनके सारे संस्कार पूर्ववत थे। कबीर के व्यक्तित्व पर इस पारिवारिक संस्कार का पूरा प्रभाव पड़ा।

पूत के पांव पालने में ही नजर आने लगते हैं, यह कहावत कबीर के लिए पूरी तरह चरितार्थ होती थी। बचपन से ही उसके क्रिया-कलाप तथा हाव-भाव आम बच्चों से बिलकुल भिन्न थे। जरा-सी आहट पाकर ही वह चौकन्ना हो जाता था। नीरू-नीमा आपस में बातें करते तो वह उनके मुख-मंडल को ऐसे निहारता मानो उनकी बातों को समझ रहा हो। कभी मुस्कुराने लगता तो कभी एकाएक गंभीर हो जाता था।

तेल-उबटन करने वाली फरीदा चाची कबीर की पारखी शक्ति एवं बाल चेष्टाएं देख अत्यंत विस्मित थी। फरीदा चाची के पैरों की आहट से ही कबीर की किलकारी गूंजने लगती थी। नहलाने-धुलाने से लेकर तेल-उबटन करते तक कबीर का खिला चेहरा और उसकी मस्तानगी देख फरीदा चाची स्वयं आनंदविभोर हो जाती थी। वह कई बार नीमा से कह चुकी थी, "नीमा, तेरा कबीर एकदम निराला है। यह मैं अपने अनुभव से कह सकती हूं। मेरी आधी से अधिक उम्र बीत गई है इसी काम को करते हुए। पानी के छींटे पड़ते ही बच्चे रोने लगते हैं। लेकिन यह तो मुस्कुराता है और मेरी उंगलियों को पकड़कर अपनी खुशी जाहिर करता है।"

सुनकर नीमा गद्‌गद हो जाती थी। उसे लगता था, सचमुच उसका बेटा एक अनमोल हीरा है। चांद की तरह बढ़ते कबीर की बाल क्रीड़ा देख नीरू-नीमा दोनों मुग्ध थे। इसी बीच एक दिन अचंभित कर देने वाली घटना घटित हुई। साल भर के कबीर को गोदी में उठाये नीरू शाम को टहलता हुआ गली में चला जा रहा था। उसी वक्त फरीदा चाची दूसरी तरफ सौदा लेने बाजार जा रही थी। और उसके पीछे सांड़ दौड़ा चला आ रहा था। फरीदा चाची तो बेखबर थी ही नीरू भी बेभान था। मगर कबीर ने बहुत दूर से देखकर ही चाची को पहचान लिया था। शायद वह आसन्न खतरे को भी भांप गया था। बार-बार नीरू का चेहरा छूकर फरीदा चाची की ओर उंगली से इशारा करने लगा।

फरीदा चाची को खतरे में देख नीरू ने तुरंत चिल्लाकर उसे सावधान किया और वह भागकर बच गई थी। इस अप्रत्याशित घटना से हक्की-बक्की चाची बालक कबीर की स्मरण शक्ति और सूझ-बूझ देख हैरान रह गई थी। उसने कबीर को गोद में लेकर गले से लगा लिया था, "हाय, कितनी दूर से पहचान लिया मेरे बेटे ने। इसकी वजह से आज मेरी जान बच गई, वरना पता नहीं क्या हो जाता?"

इसके ठीक दो दिन पहले ही कबीर ने अपने घुमक्कड़ स्वभाव और तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देकर नीरू-नीमा को हैरत में डाल दिया था। वह भी शाम का ही समय था। नीरू-नीमा दोनों आंगन में बैठे आपस में बातें कर रहे थे। आषाढ़ का महीना था। आकाश में बादल उमड़-घुमड़ रहे थे। बालक कबीर आंगन में इधर से उधर ठुमकता फिर रहा था। तभी वह नीरू के पास आया और उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा। उन दोनों को समझ नहीं आ रहा था कि वह ऐसा क्यों कर रहा है। आखिर नीरू बोला, "क्या कहना चाहता है बेटा, मैं समझ नहीं पा रहा हूं।" इस पर कबीर इधर-उधर देखने लगा। फिर थोड़ी दूर पर दरवाजे के पास रखी नीरू की जूतियों को उठा लाया और उसके सामने रख दिया। "अच्छा, घूमने चलना है।" नीरू ने कहा तो वह मुस्कुरा दिया। उसकी इस बुद्धिमता पर दोनों रीझ उठे थे। हंसती हुई नीमा बोली थी, "कह नहीं सकता मगर अपनी मंशा किस होशियारी से व्यक्त कर दिया कबीर ने।"

फिर नीरू उसे गोद में लेकर घूमने निकल पड़ा था। वैसे भी कबीर घूमने के नाम पर हर किसी के साथ हमेशा जाने को तैयार रहता। स्नेहवश जुलाहा बस्ती के लोग कबीर को उठा ले जाते फिर नीमा उसे खोजती फिरती थी। इस तरह कबीर को बाल्य अवस्था से ही

जुलाहा बस्ती का अपार प्रेम मिला था। —***क्रमशः***

प्रवचन

सद्‌गुरु का महत्त्व

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा, कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में गुरुपूर्णिमा पर *दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर जी)*

सज्जनो तथा देवियो! आज गुरुपूर्णिमा है। वैसे तो जीवन में मनुष्य के अनेक गुरु होते हैं लेकिन सद्‌गुरु की महती आवश्यकता है। जीवन में प्रथम गुरु माता-पिता हैं। माता-पिता में भी माता का स्थान पिता से ऊंचा माना गया है। नीतिशास्त्र में लिखा है कि माता और पिता यदि एक ही स्थान पर बैठे हों और पुत्र जब बाहर से आये तो उसे चाहिए कि वह पहले माता को नमस्कार करे तब पिता का नमस्कार करे क्योंकि माता की देन पुत्र के लिए बहुत है। माता के बाद ही पिता का स्थान है। जो नाल छीनती है उसे दाई कहते हैं। दाई को गुरुरूप में माना जाता है। बच्चे का कर्णबेध करनेवाले को भी गुरुरूप में माना जाता है और विद्या पढ़ानेवाले तो गुरु हैं ही। एक-एक प्रकार की विद्या पढ़ानेवाले सभी गुरु हैं। इस प्रकार जीवन में गुरु असंख्य हैं।

मैं छत्तीसगढ़ में जब भ्रमण करता था तब की एक बात याद आ रही है जो लगभग पैंतीस वर्ष पुरानी होगी। एक वृद्ध भक्त थे जो हमारे साथ-साथ चलते थे। उस समय पैदल ही चलना होता था। जब हमलोग कहीं के लिए चलते और किसी चौराहे पर पहुंचते तब वे भक्त जी कहते कि साहेब, अब किसी को गुरु बनाना पड़ेगा। उनका मतलब होता था कि किसी से रास्ता पूछना पड़ेगा।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो कहते हैं कि गुरु की क्या आवश्यकता है। लेकिन वे होशोहवास में ही नहीं हैं तभी ऐसी ऊटपटांग बात करते हैं। बिना गुरु के तो जीवन में एक पग भी चला नहीं जा सकता। जो ऐसा कहते हैं कि गुरु की कोई आवश्यकता नहीं है वे भी गुरु के द्वारा ही इस अवस्था में पहुंचे हैं।

एक बच्चा जब पैदा हो तभी से उसको ऐसी जगह पर रखो जहां कोई मनुष्य न हो। केवल एक मनुष्य उसका पालन-पोषण कर दे किंतु उसे किसी भी प्रकार का संकेत आदि न करे और न उससे बोले। तो आप देखेंगे कि वह बच्चा जवान हो जायेगा लेकिन बोलना तक नहीं जान पायेगा क्योंकि उसका कोई गुरु नहीं हुआ है, उसे किसी ने सिखाया नहीं है। तो गुरु का महत्त्व कैसे नहीं है! गुरु की महती आवश्यकता है। अप्रत्यक्ष में भी हमारे अनगिनत गुरु होते हैं और पूरी सृष्टि से हम सीखते हैं। गुरु का उपकार, गुरु का महत्त्व सहज समझा जा सकता है। एक सामान्य वस्तु का भी बोध करानेवाला न हो तो हमें उस वस्तु का पता न चलेगा, फिर जिससे भवव्याधि दूर होती है, जिससे इस जीव का भटकना बन्द होता है और जिससे इसी जीवन में परम शांति का अनुभव होता है उस तत्त्व का बोध देनेवाले तो सद्‌गुरु ही हैं।

गुरु की आवश्यकता हर जगह है। बढ़ई का काम करना हो तो किसी बढ़ई को बिना गुरु किये बढ़ई का काम नहीं सीखा जा सकता। साइकिल का पंचर यदि बनाना हो तो किसी पंचर बनानेवाले से सीखे बिना पंचर नहीं बनाया जा सकता और कहां तक कहा जाये, चोर को भी कुशलतापूर्वक चोरी करने के लिए किसी चोर को गुरु बनाना पड़ता है। गुरु की जरूरत हर जगह पड़ती है। बिना पथप्रदर्शक के किसी भी दिशा में विकास नहीं हो सकता। इसलिए गुरु की महत्ता को पूरी दुनिया के विचारकों ने स्वीकारा है, इसमें दो राय नहीं है।

ईश्वर के विषय में दो मत है। अवतार के विषय में दो मत है। मूर्तिपूजा के विषय में दो मत है। इसी प्रकार विविध बातों में दो मत है लेकिन गुरु के विषय में दो मत नहीं है। गुरु की महत्ता को सभी स्वीकारते हैं क्योंकि गुरुतत्त्व एकदम प्रत्यक्ष है। गुरु अनेक होते हैं

लेकिन सद्गुरु अनेक नहीं होता, एक होता है। जीवन में अनेक गुरुओं की आवश्यकता होती है। गुरु के बाद भी गुरु किया जा सकता है लेकिन सद्गुरु के बाद सद्गुरु नहीं किया जा सकता। सद्गुरु वह है जो सारी भ्रांतियों को काट दे। जिसका कर्तृत्व और व्यक्तित्व दोनों पूर्ण हों वही सद्गुरु है। सद्गुरु एक ऐसा व्यक्तित्व है जिससे अमृत-रस टपकता है और शिष्य खुला पात्र है जिसमें अपने आप अमृत-रस इकट्ठा होता रहता है लेकिन गुरु की जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है।

गुरु किसी आकाश में नहीं होता है किन्तु व्यक्ति ही गुरु होता है। गुरु की जितनी महिमा की जाती है उस सारी महिमा को धारण करनेवाला कोई व्यक्ति ही तो होता है। इसलिए व्यक्ति में ही गुरुत्व घटित होता है। शून्य में गुरुत्व घटित नहीं होता है। ऐसा नहीं है कि शून्य में गुरु होता है। गुरु यद्यपि ज्ञान है लेकिन ज्ञान कहां है? व्यक्ति में ही तो। जिसको हम सद्गुरु कहते हैं उसकी जिम्मेदारी बहुत हो जाती है। सद्गुरु ऐसा हो कि उसका ज्ञान भी निर्भ्रांत हो और उसका आचरण भी पूर्ण पवित्र हो और केवल आचरण ही पवित्र न हो बल्कि वह इस अवस्था में पहुंच गया हो जहां दुख ही न होता हो। जहां भय नहीं होता है, अतृप्ति नहीं होती है, शंका नहीं होती है। जहां पर पूर्ण विश्रांति है, पूर्ण निर्भयता और पूर्ण तृप्ति होती है ऐसी अवस्था सद्गुरु में होती है।

हमारे मन की चिकित्सा होनी चाहिए और मन का चिकित्सक वही हो सकता है जिसने अपने मन की चिकित्सा कर ली है। डाक्टर जो शरीर का चिकित्सक है उसको बीमारी हो जाये तो क्षम्य है लेकिन आध्यात्मिक चिकित्सक को मानसिक बीमारी हो तो क्षम्य नहीं है।

डाक्टर अगर शारीरिक रोग से ग्रसित है तो क्षम्य है लेकिन गुरु काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, शोक के वश में है, वह उद्वेगित और आन्दोलित है तो क्षम्य नहीं है। गुरु वही है जिसके मन में दुख न हो। जिसके मन में दुख नहीं है उसके दर्शन से, संगति से और याद से भी अपना मन निर्मल होता है। अब कितना हम ग्रहण करते हैं यह तो हमारे ऊपर है। गुरु तो पूर्ण है लेकिन हम ही नहीं ले पाते हैं तो हमारे में श्रद्धा, समझ और विनम्रता की कमी है। हमारे में पात्रता की कमी है। इसलिए गुरु और शिष्य दोनों का बानक बनना चाहिए।

गुरु का बानक यह है कि वह पूर्ण निष्काम हो और शिष्य का बानक, यानी शिष्यत्व यह है कि वह पूर्ण निष्कपट दिल का हो। जैसे कहीं एक मधु का छत्ता हो जिसमें से मधुरस बूंद-बूंद टपकता हो और उसके नीचे एक खुला पात्र रखा हो तो उसमें वह मधुरस टपक-टपक कर भरेगा। गुरु का व्यक्तित्व भी मानो मधुरस से भरा है और उससे मधुरस टपकता है। यदि शिष्य खुला पात्र के समान हो तो उसमें वह मधुरस अपने आप टपकेगा। गुरु का गुरुत्व है निष्काम रहना और शिष्य का शिष्यत्व है पूर्ण निष्कपट रहना।

लोग गुरु को ठगना चाहते हैं। लोगों ने साधु-महात्माओं में ऐसी आदत डाल दी है कि वे चमत्कार दिखाने के चक्कर में पड़े रहते हैं। लोग बारम्बार कहते हैं कि महाराज, लड़का नहीं है तो कुछ महात्मा लोग सोचते हैं कि चलो, अगर ऐसा काम किया जाये तो आमदनी तो अच्छी होगी ही सम्मान भी खूब मिलेगा। इसलिए वे कहते हैं कि हां-हां, मैं तुम्हें लड़का दे दूंगा। वे लड़का देना शुरू कर देते हैं। अब सौ-पचास को कहे कि लड़का हो जायेगा और किसी को लड़का होने का संयोग है तो उसको लड़का हो जाता है। फिर वह बाबा का प्रचारक हो जाता है और जिसको लड़का नहीं होता है वह कहता है कि भाई, गुरु महाराज तो कृपा किये ही थे लेकिन हमारे ही भाग्य में नहीं था। लोग काफी सहनशील भी तो होते हैं। अपना वे सब सह लेते हैं।

मुकदमे में विजय की बात आती है। लोग गुरु से प्रार्थना करते हैं कि महाराज, मुकदमे में विजय करा दें। बीमारी होती है तो बिना दवाई के चाहते हैं कि गुरु महाराज कृपा कर दें और बीमारी दूर हो जाये। इस प्रकार लोग अपनी कमजोरी से गुरु महाराज को भी कमजोर कर देते हैं। घूस देनेवाले जो होते हैं वे घूस

लेनेवाले को भी कमजोर करते चले जाते हैं और फिर घूस लेनेवाले का भी दोष है। साधु लोगों का भी दोष है कि वे प्रलोभन में पड़ जाते हैं और आशीर्वाद एवं शाप देने लगते हैं। साधु लोग प्रलोभन में आकर चमत्कार की बातें करने लगते हैं। यह गलत है।

गुरु का इतना ही काम है कि वह सच्चा ज्ञान दे और उस ज्ञान में वह स्वयं आलोकित रहे। वह ज्ञान उसके जीवन में चरितार्थ हो। चरितार्थ होने का मतलब है उस दशा में रहे। उसका मुख्य लक्षण है—उद्वेगरहित रहना। उद्वेगरहित व्यक्तित्व ही गुरुत्व है और यदि शिष्य सत्पात्र है तो उससे उसे स्वयमेव प्रेरणा मिलेगी और फिर वाणी-वचन से भी उसके विचार मिलेंगे जिससे ज्ञान बढ़ेगा और विवेक बढ़ेगा और हम अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में सम रहेंगे। समताभाव से उन्हें निपटा सकेंगे।

इस संसार में कोई चाहे कितना भी ज्ञानी क्यों न हो, उसको ठंडी लगेगी, गरमी लगेगी। प्रिय और अप्रिय का साथ जीवन में हमेशा लगा रहेगा। इनसे कोई बच नहीं सकता है। इसलिए इन दोनों को सह लेना है और यही ज्ञान है। प्रिय को सहने का मतलब है कि उसमें फुलाव न हो और अप्रिय को सहने का मतलब है कि उसमें पचकाव न हो। जिस चीज को लेकर फुलाव होता है वह क्षणिक है। आज है और कल नहीं है और जिसको लेकर मन दुखित होता है वह भी आज है और कल नहीं है।

यह केवल बुद्धि से ही जानने से काम नहीं बनेगा किन्तु इसका जीवन में अभ्यास भी करना पड़ेगा। यह जीवन में चरितार्थ तब होगा जब हम इसका जीवन में अभ्यास करेंगे। अभ्यास करते-करते निरन्तर उद्वेग घटता चला जायेगा और शांति बढ़ती चली जायेगी। ऐसा जब हो तभी हमें समझना चाहिए कि हम सफल हो रहे हैं और यह दशा स्वसंवेद्य है अर्थात अपने ही अन्दर इसको जाना जा सकता है। जो बाहरी परीक्षा है, वह इसमें काम नहीं देती है। बाहरी परीक्षा में कोई दूसरा नम्बर देता है लेकिन अध्यात्म साधना की परीक्षा स्वयं ही देनी होती है और नम्बर भी स्वयं ही देना होता है। बाहर से कोई इसका नम्बर दे नहीं सकता।

हमें स्वयं अपने अंदर में देखना होगा कि हमारे कितने विकार घटे हैं और कितने विकार अभी घटाने बाकी हैं। हमें स्वयं विचार करना है कि जब से हम सत्संग में लगे हैं तब से हमारे कितने विकार घटे हैं। पहले हमारे मन में काम का स्मरण कितना होता था और अब कितना होता है। क्या उसमें कमी आयी है? क्रोध का उद्वेग पहले कितना था और अब घटकर कितना रह गया है? मोह, लोभ, ईर्ष्या, अहंकार, शोक, चिन्ता में हम पहले जितने थे उनमें अब कितनी कमी आयी है। इसप्रकार हमें अपने विकारों का सर्वेक्षण करना चाहिए और उनको घटाना चाहिए।

हमारे विकार निरन्तर घटते जायें, यही असली साधना है। "मानुष गुण अवगुण को त्यागे"—मनुष्य का गुण यही है कि वह अपने अवगुणों का त्याग करे। अवगुणों का त्याग कर देने से सद्गुण तो अपने आप आ जाते हैं। कोई हिंसा का त्याग कर दे तो दया उसके मन में अपने आप रहेगी। राग छोड़ दे तो वैराग अपने आप उसमें रहेगा। देहाभिमान को छोड़ दे तो आत्मज्ञान अपने आप उसमें आ जायेगा। दुर्गुणों को छोड़ दे तो सद्गुण अपने आप आ विराजते हैं।

यही सच्ची साधना है कि हमारे दुर्गुण घटते जायें। ज्ञान की बात कहना, सुनना और समझना बड़ी बात नहीं है किन्तु बड़ी बात है अज्ञान को हम निरन्तर दूर करें और इसके बिना कुछ काम होनेवाला नहीं है। साधना करते बहुत दिन हो जाते हैं लेकिन हम जहां के तहां रह जाते हैं। बीस वर्ष हो गये, तीस वर्ष हो गये साधना-भजन-सत्संग, बोध आदि करते-धरते लेकिन हम जहां के तहां ही रह जाते हैं। हमारा न काम घटता है और न क्रोध घटता है। न हमारा मोह घटता है और न हमारी चिन्ता ही घटती है। तब जीवन में ज्ञान चरितार्थ कहां हुआ। ज्ञान चरितार्थ नहीं हुआ तो इसके लिए गुरु के आदर्श की आवश्यकता है।

सभी लोग कहते हैं कि काम, क्रोध और लोभ में नहीं पड़ना चाहिए। सभी लोग कहते हैं कि शोक और मोह नहीं करना चाहिए लेकिन कहनेवाले स्वयं इन सबमें लिपटे हैं तो लगता है कि यह केवल कहने-सुनने की बात है, जीवन में यह होता नहीं है। कहने-सुनने में आनन्द आता है इसलिए कह-सुन लिया जाता है लेकिन जब ऐसे व्यक्ति को हम देखते हैं जो कहता भी है और करता भी है, उसका जीवन भी वैसा ही निर्मल और उद्वेगरहित है, वह शांतात्मा है तब उससे हमें प्रेरणा मिलती है कि जैसा कहा जाता है वैसा हुआ भी जाता है।

प्रवचन ही पर्याप्त नहीं है। प्रवचन तो कोई भी दे सकता है। प्रवचन के अनुसार आचरण बनाना बड़ी बात है और यह जहां हो वही गुरु है, वही प्रकाशस्वरूप है। गुरु श्रेष्ठ, गरिष्ठ और प्रकाशस्वरूप होता है। इससे अलग गुरु की कोई क्वालिटी नहीं होती है कि कोई जीव गुरु होते हैं और बाकी सब जीव ऐसे रहते हैं। सब जीवों में गुरुत्व है। उसी को दूसरी दृष्टि से कहा जाता है कि सबके अन्दर परमात्मा बैठा है। सबके शरीर में यह जो आत्मा है इससे अलग कोई परमात्मा नहीं है। आत्मा का विकार हट जाये तो वही परमात्मा है। इसी प्रकार जिस जीव की मलिनता हट जाये, बस वही गुरु है। इस प्रकार समझना चाहिए कि सभी जीव गुरु हैं।

गुरु शिष्य नहीं बनाता किन्तु गुरु बनाता है, शुद्ध बनाता है, श्रेष्ठ बनाता है और निर्मल बनाता है। जैसा वह स्वयं है वैसा वह उसे बनाता है। जैसा गुरु है शिष्य भी वैसा ही हो जाता है और यह तभी सम्भव है जब उसमें पात्रता हो और गुरु भी सच्चे मिलें।

गुरु की महिमा पूरी दुनिया में है। भारतवर्ष सदा से अध्यात्म का केन्द्र रहा है और इसीलिए गुरु की महिमा यहां सर्वाधिक कही गयी है। वैदिककाल के बाद उपनिषद् काल में गुरु की महिमा और बढ़ी। उसके पहले गुरु की महिमा थी तो, लेकिन सद्गुरु की महिमा नहीं थी। उपनिषद् काल में सद्गुरु की महिमा बढ़ी। उसके पश्चात श्रमणकाल आता है। उसमें सद्गुरु की महिमा परिपक्व हुई। फिर सिद्ध, नाथ और संत काल आया। संत काल में सद्गुरु कबीर मुख्य माने जाते हैं। वहां तक आते-आते गुरु गोविन्द से भी बड़ा हो जाता है। निर्गुणी धारा की जितनी शाखाएं हैं उन सबमें गुरु का महत्त्व सर्वाधिक है। इस प्रकार अध्यात्म की दिशा में हम जितना बढ़ते गये हैं, सद्गुरु की महिमा बढ़ती गयी है। कर्मकाण्ड में जब हम लिप्त थे तब उसमें केवल गुरु की ही महिमा थी, सद्गुरु की महिमा कम थी। लेकिन जैसे-जैसे कर्मकाण्ड की तरफ से अध्यात्म की तरफ हम बढ़ते गये सद्गुरु की महिमा भी उतनी-उतनी बढ़ती गयी। यज्ञ और हवन, स्वर्ग इत्यादि की प्राप्ति और इस जीवन में रहकर सुख से कैसे जीयें इसके लिए पढ़ाई-लिखाई यही सब कर्मकाण्ड में था, आज भी इन सबकी महती आवश्यकता है और आगे भी रहेगी।

लेकिन हमारे वे ही ऋषि जब यह निरन्तर शोधते गये कि हम इस जीवन में सम्पन्न होकर भी सुखी नहीं हो सकते हैं और स्वर्ग की जो व्याख्या की गयी है वह भी बड़ी कमजोर है। वहां पर भी ऊंची-नीची बिल्डिंगें होती हैं। जिन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किया है स्वर्ग में उनको बड़ी बिल्डिग मिलेगी और जिन्होंने छोटे-छोटे यज्ञ किये हैं उनको छोटी-छोटी बिल्डिग मिलेगी और एक दिन जब पुण्य खत्म हो जायेगा तब उनको गरदन पकड़कर नीचे गिरा दिया जायेगा। ये सब बातें खटकने लगीं। तब हमारे ऋषियों ने सोचा कि पूर्णता और तृप्ति तो वहां भी नहीं है। इसलिए उन्हीं ऋषियों ने सोचना शुरू किया कि स्वर्ग भी क्षणिक है और तब आत्मा की ओर उनका चिंतन बढ़ा।

आप लोग मुण्डकोपनिषद् को देखें तो पता चलेगा कि उसमें विद्वान लोग कर्मकाण्डी लोगों का मजाक उड़ाते हैं। वह मुड़िया लोगों का अर्थात मूंड़ मूड़ानेवाले साधुओं का उपनिषद् होने से उसको मुण्डकोपनिषद् कहा गया है। उसमें बड़े तार्किक ढंग से कर्मकाण्ड का खण्डन किया गया और कहा गया-"अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः"—जैसे अंधा अंधे को चलाये उसी प्रकार ये कर्मकाण्डी लोग भी स्वाहा-स्वाहा कर रहे हैं। इतना कसकर उन लोगों ने कर्मकाण्ड के विरुद्ध कहा कि हद

है और छांदोग्य उपनिषद् में तो स्वाहा-स्वाहा को—"श्वागान"—कुत्तों का गीत ही कह डाला गया। उन्हीं ऋषियों में क्रांति आयी और वे अध्यात्म की तरफ बढ़ते चले गये। उनके द्वारा बनायी गयी पूरी उपनिषदें अध्यात्म से छायी हैं और सद्गुरु का उसमें सर्वोपरि महत्त्व बताया गया है और सद्गुरु का वह महत्त्व निरंतर बढ़ता चला गया है।

मैं कह रहा था कि गुरु की आवश्यकता हमारे जीवन में पदे-पदे है। हमारा जीवन गुरु के द्वारा निखरता है। आप जो बोल पा रहे हैं वह गुरु ने सिखाया है। पहले-पहल मां ने बोलना सिखाया है। एक-एक शब्द, एक-एक बात उसने हमलोगों को सिखाया है। मां जैसा गुरु धन्य है। मां के बाद फिर पिता का स्थान है और फिर अन्य लोगों का है। फिर विद्या पढ़ाने-लिखानेवाले लोग और फिर अनगिनत लोग हमारे गुरु हुए हैं। कहीं किसी एक ही बात की सीख किसी से मिल जाये तो उस बात के लिए वह हमारा गुरु हो गया। हम लोग लेखक हैं, प्रवक्ता हैं और जानते हैं कि बचपन में कितने लोगों के मुख से सुनी-सुनाई बातें हमारे जीवन में आयीं और वे हमारे लेखों और प्रवचनों में भी आती रहती हैं। कहां-कहां से और किन-किन से उन बातों को हम सुने। हरजोत्ते आदमी से, गाय चरानेवालों से, गाड़ीवानों से, पागलों से, स्त्रियों से और पुरुषों से सुने और वह सब सुनते-सुनते ज्ञान का खजाना हुआ। हम अनेक लोगों से पढ़े और सुने जिससे हमारे ज्ञान का भण्डार बढ़ा। अगर हम विनम्रता से देखें तो पूरी सृष्टि ही मानो गुरु है और सब तरफ सिर झुकाने की जरूरत है।

हमें सब तरफ से ज्ञान मिलता है, शक्ति मिलती है, बोध मिलता है लेकिन एक सद्गुरु ही है जहां पर हम पूर्णतया समर्पित होते हैं, जहां से हमें पूर्ण बोध मिलता है। जहां से हमें पूर्ण तृप्ति मिलती है और जहां पर हमें पूर्ण निर्भ्रांत दृष्टि प्राप्त होती है लेकिन उसके अलावा और गुरुओं की भी आवश्यकता और महत्ता कम नहीं है।

गुरु और सद्गुरु में भेद मैंने किया और कहा कि माता-पिता, पढ़ाने-लिखानेवाले और एक-एक विषय की शिक्षा देनेवाले असंख्य गुरु हैं लेकिन सद्गुरु अनेक नहीं है किन्तु एक है। उसी सद्गुरु के मिलने पर मन की पीड़ा दूर होती है लेकिन जब उसकी शिक्षा को ग्रहण करे तब। सद्गुरु तो देता है लेकिन जिसमें लेने की योग्यता होती है वह लेता है।

सद्गुरु की क्या योग्यता होनी चाहिए यह भी जान लेना चाहिए और लोग यह प्रायः पूछा भी करते हैं। सद्गुरु की योग्यता होनी चाहिए—निर्भ्रांत बोध और पक्का आचरण। जो गुरु हो उसका बोध सच्चा हो और उसका आचरण पक्का हो। वह जो कह रहा हो उसमें वह जी रहा हो।

एक जगह की बात है। एक बड़े गुरु से मिलने दो व्यक्ति गये। गुरु के निवास के दरवाजे पर दो दरबान खड़े थे। भक्तों ने कहा कि हम लोग गुरुजी से मिलने आये हैं। आप हमें उनसे मिलवाइये।

दरबानों ने कहा कि आज और कल गुरु जी मिल नहीं सकते।

भक्तों ने पूछा—आज और कल उनके न मिलने का कारण क्या है?

दरबानों ने बताया कि "गुरु जी इस समय पुत्र-शोक में हैं इसलिए वे आपसे नहीं मिल सकते।" तब भक्तों ने कहा कि जब गुरु ही शोक में हैं तब हमारा शोक वे कैसे दूर कर सकते हैं। इसलिए जहां मोह और शोक है, वहां गुरुत्व कहां है।

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—तत्र का मोहः का शोकः—इस बोध को प्राप्त हो जाने पर मोह कहां और शोक कहां। मोह और शोक का मिट जाना ही तो गुरुत्व है। मोह से ही शोक होता है। मोह मिट जाये तो शोक होने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मोह हमारा अविवेक है। जो हमारा नहीं है, उसी को हम जीवन भर अपना मानते रहते हैं।

इस पर आप थोड़ा विचार करें कि क्या यह चेहरा हमारा है। हम इस चेहरे को रोज दर्पण में देखते हैं, हम

अपने हाथों को देखते हैं, सीने को देखते हैं, पेट को देखते हैं, एड़ी को देखते हैं, उंगलियों को देखते हैं, एक-एक अंग को देखते और मानते हैं कि ये मेरे हैं लेकिन इससे बड़ा पागलपन और क्या हो सकता है। क्या ये अंग मेरे हैं? ये अंग अपने नहीं हैं। यह शरीर अपना नहीं है। यह तो आजकल में किसी गड्ढे में पड़ा-पड़ा सड़ेगा या आग में धूं-धूं कर जलेगा या गंगा में प्रवाहित कर दिया जायेगा। जहां मछलियां और मेढक इसको खा लेंगे।

यह शरीर मेरा कहां है। हम जीवनभर उसको अपना मानते हैं जो बिलकुल हमारा नहीं है और जो हमारा है उसका हमें पता ही नहीं है। सद्गुरु उसी का बोध देता है जो हमारा है। वह हमारी आत्मा है, वह हमारा राम है जो हमारे अन्दर विद्यमान है। भारतीय परम्परा में वेदों से लेकर आजतक के निर्णय ग्रंथों को देखो तो सबमें यही है। ऋग्वेद में आता है—

सहर्षशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

ऋषि कहते हैं कि जिसके हजारों सिर हैं, हजारों पैर हैं, हजारों ग्रीवा हैं वह सब तरफ से व्याप्त करके दस अंगुल के ऊपर बैठा है। दस अंगुल के ऊपर यानी हृदय में बैठा है। नाभि से दस अंगुल ऊपर नापो तो हृदय आ जाता है। "हृदय में है" यह बारम्बार वेदों में कहा गया है।

श्रुतियों में ऋषि आत्म तत्त्व का निवास हृदय में कहते हैं और कबीर साहेब की वाणी में भी देखें तो घट-घट में उसका निवास वे कहते हैं। साहेब कहते हैं कि वह दिल में बसा हुआ है—हृदया बसे तेहि राम न जाना। जो सबके दिल में बसा है उस रामतत्त्व का बोध सद्गुरु देते हैं और शरीर जो अपना नहीं है उसी को सद्गुरु बताते हैं कि वह साधन है। शरीर मोह करने की चीज नहीं है कि दर्पण में देख-देखकर जपते रहो कि वाह रे हम! अरे भाई, तुम जो दर्पण में देखते हो वह तुम कहां हो। इस शरीर के अन्दर मांस, हड्डी, रक्त, मूत्र और टट्टी ही तो भरे हैं और इसी को आप माने बैठे हैं कि "यह मैं हूं और यह मेरा है।"

सद्गुरु कहते हैं कि यह तेरा नहीं है बल्कि यह कल्याण प्राप्त करने का साधन है। यह भोग की सामग्री नहीं है कितु यह साधना करने की सामग्री है। यह अहंता और ममता करने की चीज नहीं है। इससे साधना करना है। आपको भोजन करने के लिए पतरी दी गयी है उसमें भोजन कर लेना है, उसे छाती-पेटे लगाना नहीं है। पतरी में भोजन कर लो और फिर लपेटकर उसे फेंक दो।

यह शरीर भी ऐसे ही पतरी के समान है। इसमें रहकर आध्यात्मिक भोजन कर लेना है। आजकल में इसे लपेटकर घूर पर फेंक दिया जायेगा। हम स्वयं तो फेंकना नहीं चाहेंगे परन्तु अपने आप यह एक दिन फेंक उठेगा। हम स्वयं ही जब इसे फेंक दें तब हमारी वीरता है। स्वयं हमारे चित्त से देह का अभाव हो जाये। जब आत्मा का भाव होगा, राम में लीनता होगी, तब देह का अभाव होगा। जो सद्गुरु होते हैं वे यही बताते हैं। जो गुरु होते हैं वे तो और भी पढ़ाते-गुनाते और समझाते हैं। आचार्य लोग अनेक विषय पढ़ाते-समझाते हैं। व्यावहारिक जीवन में उन सबकी जरूरत है। व्यावहारिक बातों की आवश्यकता है लेकिन जहां पर मन की पीड़ा खत्म होती है, जहां पर मन का मोह खत्म होता है, शोक खत्म होता है, जहां पर भय खत्म होता है और जीवन पूर्ण निर्भय और आनन्दमय हो जाता है, दुख नाम की चीज नहीं रह जाती है उसी का बोध सद्गुरु देता है। और वही सक्षम सद्गुरु है जो उस स्थिति में रहता हो, उस रहनी में रहता हो। गुरु ही जब शोक में है तब शिष्य का बेड़ा पार कैसे होगा। गुरु को शोक नहीं होता है क्योंकि उसका सारा मोह ही जब मिट गया तब उसको क्या शोक होगा। वह तो पूर्ण है, तृप्त है, आनन्दकन्द है और कल्याणमय है। ऐसे सद्गुरु की शरण की आवश्यकता है। ऐसे सद्गुरु की शरण में विनम्र होकर एक शिशु के समान रहना चाहिए। शिशु बन जाओ तब देखो कि कितना जल्दी-जल्दी ज्ञान ग्रहण होता है और कितना जल्दी आचरण ग्रहण होता है।

—क्रमशः